अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00
❑ अंक : 21
❑ 16-30 जून, 2014
❑ वर्ष : 37

पृथ्वी माता हमारा पोषण करती है

हमारे समय की भारतीय संस्कृति अभी निर्माण की अवस्था में है। हम लोगों में से कई उन सब संस्कृतियों का एक सुन्दर संमिश्रण रचने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो आज आपस में लड़ती दिखाई देती हैं। ऐसी कोई भी संस्कृति, जो सबसे बचकर रहना चाहती हो, जीवित नहीं रह सकती। भारत में आज शुद्ध आर्य संस्कृति जैसी कोई चीज नहीं है। आर्य लोग भारत के ही रहने वाले थे या यहां बाहर से आये थे या यहां के मूल निवासियों ने उनका विरोध किया था, इस सवाल में मुझे ज्यादा दिलचस्पी नहीं है। जिस बात में मेरी दिलचस्पी है वह यह है कि मेरे अति प्राचीन पूर्वज एक-दूसरे के साथ पूरी आजादी से घुल-मिल गये थे और हम उनकी वर्तमान सन्तान उस मेल का ही परिणाम हैं। अपनी जन्मभूमि का और इस छोटी-सी पृथ्वीमाता का, जो हमारा पोषण करती है, हम कोई हित कर रहे हैं या उस पर बोझरूप हैं, यह तो भविष्य ही बतायेगा।

('सिलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी' से)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 21
16-30 जून, 2014

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविताएं 2
2. जन-क्रांतियों की विफलता... 3
3. पर्यावरण–छेड़छाड़ से हमें... 4
4. राजरोगियों की खतरनाक... 6
5. पर्यावरणीय आपदा और... 7
6. पर्यावरण-प्रदूषण : नियंत्रण... 8
7. बाढ़, सिंचाई और नीति... 10
8. आखातीज से कीजिए... 13
9. भूजल संकट : कृषि के... 15
10. खेती की लागत कम... 17
11. ठिहरी बांध : झील में... 18
12. रपट : शांति सद्भावना... 19
13. मानव जीवन-मूल्य... 20

कविताएं

उठना

–डॉ. पद्मजा शर्मा

कितना भी सँभालो
जिसे गिरना है
गिर के रहेगा
कितना भी गिराओ
जिसे उठना है
उठ के रहेगा
जैसे बीज
जमीन पर गिराया जाता है
मिट्टी तले दबाया जाता है
पर एक दिन मिट्टी को फोड़
फसल बन कर
आखिर ऊपर उठ ही आता है बीज
अगर उठना और गिरना ही हो
तो धरती पर बीज की तरह गिरो
और फिर फसल की तरह उठो

जन्म स्थान

अरसे बाद
जब कभी हम लौटते हैं
अपने जन्म स्थान
तो मुस्कान
हँसी
खुशी
बचपना
सब लौट आता है
हमारे साथ
कम से कम
इस जीवन में
एक बार तो
लौटना चाहिए
सबको
अपने
जन्म स्थान

बड़ा आदमी

मुझे वह बड़ा आदमी
अच्छा नहीं लगता
जो किसी को छोटा करके
बनता है बड़ा
इस तरह बड़ा बनकर
कहाँ रह पाता है
आदमी
बड़ा आदमी

15 बी., पंचवटी कॉलोनी, सेनापति भवन के पास, जोधपुर-342011 (राजस्थान), मो. 09414721619

संपादकीय

जन-क्रांतियों की विफलता : लोकसत्ता निर्माण ही विकल्प

गांधीजी ने क्रांति की जिस समग्र अवधारणा के सूत्रों का विकास किया, उनका महत्त्व समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि हम इस पर भी विचार करें कि पहले हुई जन-क्रांतियां असफल क्यों हुईं। फ्रांस की क्रांति, अमेरिका में हुई क्रांति, रूसी क्रांति तथा चीन में हुई क्रांति—ये सभी जन-क्रांतियां अंततः विफल हो गयीं। विफल इसलिए, क्योंकि जिन मूल्यों एवं आदर्शों के लिए जन-संघर्ष हुए थे, सत्ता-परिवर्तन के बाद वे समाज उन मूल्यों एवं आदर्शों से भटक गये।

जब कोई जन-क्रांति होती है, तो तमाम अन्य प्रभावों के अलावा, दो और बातें होती हैं। एक, कुछ बुनियादी मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा या पुनः प्रतिष्ठा तथा दूसरे लोक की शक्ति/ऊर्जा का जबरदस्त उभार।

जब जन-क्रांति के फलस्वरूप बदलाव केवल राजसत्ता परिवर्तन में सीमित हो जाता है एवं पूंजीवाद का विकल्प प्रस्तुत नहीं होता तो इसका परिणाम क्या होता है। जिन मूल्यों के इर्द-गिर्द जन-उभार प्रकट होता है, वे मूल्य तो जनमानस में बने रहते हैं। लेकिन लोक की जिस शक्ति एवं ऊर्जा का उभार प्रकट होता है उससे लोकसत्ता का निर्माण नहीं होता। चूंकि राजसत्ता एक शीर्ष केन्द्रमुखी श्रेणीबद्ध व्यवस्था है तथा पूंजीवाद भी एक शीर्ष केन्द्रमुखी श्रेणीबद्ध व्यवस्था है, इस कारण ये दोनों एक-दूसरे के सह-विकास में सहयोगी बने रहते हैं तथा क्रांति के दौरान जिस शक्ति/ऊर्जा का उभार होता है उसे अपने में समाहित कर लेते हैं। राजसत्ता नयी व्यवस्था लाने के नाम पर तथा पूंजीवाद विकास के नाम पर उस शक्ति एवं ऊर्जा को अपने में समाहित कर लेती है, जो जन-क्रांति के दौरान प्रकट होती है। इस कारण क्रांति के बाद नयी राजसत्ता एवं पूंजीवाद (या राज्य पूंजीवाद) दोनों और अधिक मजबूत हो जाते हैं।

लोक में नव प्रतिष्ठित हुए मूल्यों का, इस राज्य व्यवस्था से तथा पूंजीवादी (या राज्य पूंजीवादी) व्यवस्था से अंतर्विरोध बढ़ता जाता है तथा कालान्तर में राजसत्ता एवं अर्थसत्ता दोनों जन-विरोधी हो जाती हैं। क्रांतियां असफल होती जाती हैं।

अर्थात् क्रांतियों के असफल होने के मूल में लोक का सत्ता एवं अर्थव्यवस्था से विलगाव होना हो जाता है। व्यक्ति उन व्यवस्थाओं में मात्र एक पुर्जा मात्र बन कर रह जाते हैं।

क्रांतियों के बाद मूल्यों को विस्तार देने एवं गहराने का काम कहीं नहीं हुआ। राज-सत्ताओं ने और अर्थ-व्यवस्थाओं ने तथाकथित भौतिक 'विकास' पर जोर दिया। आम मनुष्य की सन्तुष्टि के लिए जीवन मूल्यों—प्रेम, सहकार आदि को या सामाजिक मूल्यों जैसे न्याय एवं स्वतंत्रता आदि को गौण बना दिया गया। इन मूल्यों के बिना भी एक उपभोक्ता के रूप में उसे विकसित किया जाने लगा तथा उसे एक उपभोक्ता के रूप में क्या चाहिए इसका प्रचार, संचार माध्यमों (जैसे टेलीविजन आदि) में विज्ञापन द्वारा होने लगा।

निर्णय लेने की व्यवस्थाओं से तथा उत्पादन के साधनों से बेदखल किये गये लोग यह भूलने लगे कि लोक की स्वायत्तता, लोक का स्वराज्य एवं लोक का स्वामित्व जैसे महत्त्वपूर्ण बुनियादी अधिकारों का अपहरण, इन क्रांतियों के बाद हो गया है।

गांधीजी ने क्रांति में यही महत्त्वपूर्ण आयाम शामिल किया। कोई भी क्रांति जिसमें लोक की स्वायत्तता, लोक का स्वराज्य एवं लोक के स्वामित्व का अपहरण होता है, वह उन्हें स्वीकार नहीं था। जिन मूल्यों के लिए क्रांति हुई उन मूल्यों को और अधिक विस्तार देने एवं गहराने का कार्य लोक संगठनों एवं लोकसत्ता द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए लोक संगठन एवं लोकसत्ता के निर्माण का काम क्रांति के कार्य का सबसे अहम् आयाम है।

लोक की जिस शक्ति एवं ऊर्जा का उभार क्रांतियों के दौर में प्रकट होता है उसका अधिष्ठान लोकसत्ता में हो, इसके लिए जरूरी था कि शीर्ष केन्द्रमुखी श्रेणीबद्ध व्यवस्था के बजाय सामुद्रिक वृत्तों की तरह लोकसत्ताओं का विस्तार होता जाये। गांधीजी ने ग्राम गणराज्य एवं ग्राम स्वराज्य की कल्पना को मूर्त्त रूप देने के लिए कई प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रम भी शुरू किये थे। इस प्रकार लोक की सत्ता के अपहरण की प्रक्रिया को न केवल रोका जा सकता था, बल्कि लोक की सत्ता एवं लोक स्वराज्य को अधिकाधिक सुदृढ़ किया जा सकता है।

इसी प्रकार श्रम के शोषण को रोकने के लिए तथा लोक स्वामित्व के अपहरण को रोकने के लिए, उन्होंने कहा कि ऐसी कोई टेक्नालॉजी स्वीकार्य नहीं होगी, जिससे उत्पादक-श्रमिक का उत्पादन के साधनों से बिलगाव हो जाये। या व्यापक स्तर पर संसाधनों का उपयोग लोक स्वामित्व के दायरे से बाहर हो जाये। यह पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था एवं पूंजीवादी बाजार का निश्चित विकल्प था। स्वदेशी, शरीर-श्रम, ट्रस्टीशिप एवं ग्रामस्वराज्य के विचार इस विकल्प के प्रारम्भिक सूत्र थे।

हम जिस क्रांति कार्य से जुड़े हैं, उसमें इन मूल्यों को दाखिल करने का काम निरन्तर करते रहना होगा।

बिमल कुमार

पर्यावरण-छेड़छाड़ से हमें भारी नुकसान होगा

❑ सुंदरलाल बहुगुणा

हमारी भारतीय संस्कृति अरण्य संस्कृति थी। हमारी शिक्षा के केन्द्र, अर्थात् आश्रम अरण्य में थे। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अरण्यों को पुनर्जीवित करने के लिए शांति निकेतन की स्थापना की। कमरों के अंदर पढ़ने का चलन तो अंग्रेजों ने पैदा किया था क्योंकि उनका देश ठंडा था और घरों से बाहर बैठकर पढ़ाई नहीं हो सकती थी। इसलिए उन्होंने यह सारा जाल बुना। उनके आने से पहले तक भारत में सब कुछ खुले आसमान के नीचे होता था। क्योंकि खुले आकाश के नीचे और प्रकृति के सान्निध्य में मनुष्य के विचारों को स्फूर्ति मिलती है, नये-नये विचार आते हैं।

वह कमरे के अंदर उन्हीं विचारों को बार-बार दोहराता रहता है जो उसके अंदर जमा होते हैं। क्योंकि कमरे की इतनी कम परिधि होती है जिसमें वह कमरे की चारों ओर ही चक्कर काटता रहता है। यदि भारत को अपना वर्चस्व कायम रखना है तो उसे अपने अतीत की ओर देखना चाहिए अर्थात् उसे पुनः वही जीवन-पद्धति अपनानी चाहिए जो उसे अरण्य संस्कृति से प्राप्त हुई थी। जिसमें चिन्तन करने और नये विचारों को प्राप्त करने के लिए, खुले आसमान के नीचे, पेड़ों के नीचे और नदी के किनारे बैठकर अध्ययन किया जाता था।

आपने देखा ही होगा कि कोई भी ऋषि नदी के किनारे या पहाड़ की उस चोटी पर बैठकर ध्यान लगता है जहां से प्राकृतिक सुंदरता अर्थात् जीवंत प्रकृति के दर्शन होते हैं। इस प्रकार प्रकृति से हमें स्थायी मूल्यों की प्राप्ति होती है। आज हमें दो-तीन चीजों की आवश्यकता है—पहली तो आज को अपने अतीत से जोड़ने की, जिस प्रकार कोई भी वृक्ष अपनी जड़ों के साथ जुड़ा होता है और अगर उसे जड़ से अलग कर दिया जाय तो वह सूख जाता है। उसी तरह किसी भी समाज की जड़ उसका अतीत होता है और अगर उसको उसके अतीत से काट दिया जाय तो वह भी तरक्की नहीं कर पाता है।

दूसरी बात मनुष्य को जिन्दा रहने के सभी साधन प्रकृति से मिलते हैं। प्रकृति को जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और ऑक्सीजन कमरे के अंदर पैदा नहीं हो सकती है। उसे जल की भी आवश्यकता होती है और जल के बारे में आस्ट्रेलिया के सोवरगर नामक विद्वान ने "The Living Water" 'जिन्दा जल', नामक एक पुस्तक लिखी। उनके अनुसार हर जगह का पानी जिन्दा नहीं रहता है जैसे नल के अंदर गया हुआ पानी स्वछन्द रूप से खासकर पहाड़ी नदी में बहने वाले जल की अपेक्षा कम स्वच्छ होता है क्योंकि वह पानी पहाड़ों से टकरा-टकरा कर अपने को स्वच्छ रखता है और उसी पानी को जीवंत कहा जाता है।

शायद इसलिए हमारे यहां हरिद्वार में गंगा में श्राद्ध तर्पन करने के पीछे भी यही सोच काम करती हो; क्योंकि गंगा, अपना हरिद्वार तक का सफर पहाड़ी क्षेत्र में बहकर तय करती है। उसके बाद उसका पानी, उसकी गति कम हो जाती है और गति कम होते ही वह प्रदूषण का घर बन जाती है। इस प्रकार दूसरा तत्त्व स्वच्छ पानी है।

उनके अनुसार जीने के लिए तीसरा साधन 'अन्न' है और वृक्ष हमें फलों द्वारा पोषण देते हैं। हम वृक्षों को इसलिए उगाते हैं ताकि हमें उनसे पोषण की प्राप्ति हो। शुरू में अन्न, मनुष्य की खुराक नहीं थी। शुरू-शुरू में हम पशुपालक थे और पशुओं के साथ अपना जीवनयापन करते हुए फलों का सेवन करते थे लेकिन उस दौरान स्त्रियों को काफी कष्ट होता था क्योंकि उनके साथ रहने वाले पशु सब घास तथा अन्य पौधों को चर लिया करते थे जिससे फिर उस स्थान पर हरियाली की कमी हो जाती थी। उन्हें उस स्थान को छोड़कर अन्य स्थानों पर जाना होता था। इसलिए उन्होंने धीरे-धीरे घास के बीजों को पकाकर खाना शुरू किया और इस तरह मनुष्य ने अन्न पैदा करना, उसे संग्रह करना और उसे पकाना शुरू कर दिया।

जब से मनुष्य ने अन्न की खेती करना और उसका संग्रह करना शुरू किया तभी से दुनिया में अधिकांश लड़ाइयां शुरू होने लगीं। अब समय आ गया है कि मनुष्य जाति को अपने भविष्य के बारे में नये सिरे से सोचना होगा। सबसे पहले तो हमें आधुनिक युग के नये अवतार 'प्रदूषण' का हल निकालना होगा।

आज पूरे विश्व में प्रदूषण ने अपना जाल इस तरह बिछाया है जबकि आज से कुछ साल पहले तक लोगों ने प्रदूषण शब्द के बारे में सुना तक भी नहीं था। मुझे याद है कई वर्ष पहले 'इंडिया इंटरनेशनल सेंटर' में प्रदूषण के बारे में एक गोष्ठी हो रही थी। हमारी गोष्ठी चल ही रही थी, तभी वहां एक ग्रामीण आ गया, उसने उन सभी बातों को सुनने के बाद हमसे पूछा कि यह खरदूषण कहां से आ गया?

ये बड़े-बड़े साहब उससे इतना क्यों डर रहे हैं, आखिर यह है कहां? तो इस प्रकार से आज तक उसने इस प्रदूषण शब्द को भी नहीं सुना था इसलिए वह उसे खरदूषण कहकर पुकार रहा था। मैंने, किसी की ओर इशारा करते हुए कहा कि यह इनकी पोशाक के अंदर छिपा हुआ है, इनकी जीवनशैली ही प्रदूषण को जन्म देती है।

आज समाज की प्रगति के आगे कई समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। उनमें पहली है, 'युद्ध का भय' क्योंकि आज गरीब से गरीब देश भी अपनी अधिकांश कमाई अनुत्पादक कार्यों जैसे हथियारों को जमा करने

और सेनाओं पर खर्च करने में लगा रहा है, इस कारण से वहां की सामान्य जनता को नुकसान हो रहा है। समाज का दूसरा बड़ा खतरा 'प्रदूषण' है। आज आबादी बढ़ने के साथ-साथ नागरिक सुविधाएं भी बढ़ रही हैं जिनसे धूल, धुआँ और शोर जैसे तीन दैत्य हमारे देश को प्रदूषित करते जा रहे हैं। हवा में बढ़ते धूल और धूएं के कारण पत्तों के ऊपर भी धूल जमती जा रही है जिससे हमें साँस लेने में भी दिक्कत होने लगी है और हम लोग कई साँस संबंधी समस्याओं से ग्रस्त होते जा रहे हैं।

आज भी मुझे सन् 1972 में संयुक्त राष्ट्र विज्ञान परिषद् की पत्रिका में छपे एक दंड चित्र के कार्टून की याद आती है जिसमें एक बौना आदमी एक बड़े पेड़ को अपनी बाँह के बीच में पकड़कर दौड़े जा रहा है, दौड़े जा रहा है। किसी ने उससे पूछा, कहां जा रहे हो? जरा ठहरो...उसने कहा, देखता नहीं है कि सीमेंट की सड़क मेरा पीछा करती आ रही है। इस प्रकार काफी सालों से मनुष्य को सभी तरह की सुख-सुविधाएं प्रदान करने की लालसा के कारण आज ऐसे कई निर्माण कार्यों पर जोर दिया जा रहा है जिससे हमारी प्रकृति और हमारे स्वास्थ्य को घातक नुकसान हो रहा है।

एक परिभाषा है कि जंगल एक समुदाय है, जैसे समाज में अनेक प्रकार के लोग एक साथ रहते हैं उसी तरह से जंगल में भी कई प्रकार के वृक्ष, लताएँ, झाड़ियाँ और जीव-जन्तु मिलकर एक समुदाय बनाते हैं। वे सभी एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं।

वनों के संरक्षण में कई ऐसे औषधीय पेड़-पौधे और जड़ी-बूटियों का रोपण हो रहा है लेकिन शायद वे अधिक उत्तम न हों। अगर वे उत्तम किस्म के न हों तो उनके गुण धर्मों में भी अंतर होगा। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिए। अब समय आ गया है जब हमें अपनी प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करनी बंद कर देनी चाहिए और विकास के साथ-साथ प्रकृति के पुनर्जीवन के बारे में भी सोचना चाहिए। इसके अलावा मनुष्य को प्रकृति के साथ मिलकर रहने की आदत बनाने का भी प्रयास करना चाहिए।

जैसा कि पहले भी था जिसे Symbiotic Relationship कहते हैं।

मैं, यहां पहाड़ों की बात इसलिए कर रहा हूं कि पहाड़ हमारे जल की मीनारें हैं। हमारे जीवन के लिए जल बहुत महत्त्वपूर्ण है। जल संकट का तो कोई मुकाबला ही नहीं कर सकता है। इसी प्रकार खेती भी सभी के लिए अनिवार्य है, अगर हमें भविष्य की जाति को जिन्दा रखना है तो हमें अपनी कृषि-व्यवस्था को जिन्दा रखना होगा।

क्या, आपको अन्न की खेती का भविष्य बहुत उज्ज्वल नजर नहीं आता है? हालात जैसे भी हों, इतने कम समय में अन्न की बढ़िया खेती नहीं होती।

अब पहले वाली विशुद्धता भी खतम हो गयी है, उसमें कीटनाशक भी शामिल हो गये हैं और उसका जैविक स्तर भी बिगड़ गया है। हमारे यहां दो तरह के खाद्य पदार्थ होते हैं। एक तो, विशुद्ध, साधारण खादों वाली और दूसरी जैविक खादों वाली होती है जिसे अमीर लोग ही खरीदते और खाते हैं।

अब तो ऐसी स्थिति हो गयी है कि हम टमाटर जैसी चीज में भी जिनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा मांस डालकर उसमें मांस पैदा कर दिया। ऐसे में, अब हमारा टमाटर भी शाकाहारी की जगह मांसाहारी ही हो गया है। प्रकृति के साथ इस तरह की छेड़छाड़ ठीक नहीं है क्योंकि इस तरह की छेड़छाड़ से हमारे पर्यावरण के साथ-साथ हमें भी भारी नुकसान झेलना होगा। ❑

छत्तीसगढ़ सर्वोदय मित्र मंडल

छत्तीसगढ़ सर्वोदय मित्र मंडल का द्वितीय प्रांतीय सम्मेलन 2014 श्रीराम गोशाला, सिलीडीह, जिला-धमतरी में 18 मई, 2014 को संपन्न हुआ। लोकसेवकों, सर्वोदय मित्रों, गो-सेवकों एवं इस विचारधारा से जुड़े लोग उपस्थित हुए। सम्मेलन में कार्य गतिविधियों, आर्थिक विषयों एवं जिला सर्वोदय मंडलों की कार्यविधि पर चर्चा के साथ ही जल-जंगल-जमीन, गो-रक्षा विषयों से संबंधित एवं जैविक कृषि संबंधित विषयों पर चर्चा हुई। सम्मेलन में छत्तीसगढ़, सर्वोदय मित्र मंडल के अध्यक्ष का चुनाव कार्य संपन्न हुआ एवं पूर्व प्रांतीय अध्यक्ष को ससम्मान विदाई दी गयी।

सम्मेलन में मुख्य अतिथि श्री विजय भाई, मंत्री, सर्व सेवा संघ, श्री रामकिशोर साहू, पूर्व प्रांतीय अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ तथा विशिष्ट अतिथि डॉ. के. के. साहू प्रमुख, कृषि वैज्ञानिक, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर के अतिरिक्त अन्य कई लोग उपस्थित रहे। सम्मेलन में छत्तीसगढ़ प्रांतीय मित्र सर्वोदय मंडल के चुनाव में श्री सियाराम साहू को सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुना गया।

सियाराम साहू ने छत्तीसगढ़ राज्य के समस्त जिलों में सर्वोदय मंडल की जिला इकाई का गठन करने का संकल्प लिया ताकि राज्य के निवासियों को महात्मा गांधी, विनोबा भावे एवं जयप्रकाश नारायण के ग्रामीण उत्थान के लिए किये गये कार्यों का लाभ मिल सके। छत्तीसगढ़ राज्य के प्राकृतिक संसाधन—भूमि, जल, एवं जैव-विविधता का समुचित दोहन के लिए सर्वोदय मित्र मंडल द्वारा एक कार्ययोजना बनाये जाने की बात पर जोर देते हुए इस दिशा में राज्य के कुछ गांवों का चयन कर वहां जमीनी स्तर पर कार्य करने की बात कही। नवनिर्वाचित अध्यक्ष को उपस्थित सभी सदस्यों ने स्वागत किया।

सर्व सेवा संघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री महादेव विद्रोही को छत्तीसगढ़ सर्वोदय मित्र मंडल द्वारा अभिनंदन किया गया। प्रतिनिधि श्री विजय भाई ने उनके स्थान पर अभिनंदन पत्र, शाल एवं श्रीफल ग्रहण किया।**–सियाराम साहू**

राजरोगियों की खतरनाक रजामंदी

❑ अनुपम मिश्र

अच्छे लोग भी जब राज के नजदीक पहुंचते हैं तो उनको विकास का रोग लग जाता है, भूमंडलीकरण का रोग लग जाता है, उनको लगता है सारी नदियां जोड़ दें, सारे पहाड़ों को समतल कर दें—बुलडोजर चला कर, उनमें खेती कर लेंगे। मात्र यही खयाल प्रकृति के विरुद्ध है। मैं बार-बार कह रहा हूं कि यह प्रभु का काम है, सुरेश प्रभु सहित देश के प्रभु बनने के चक्कर में इसे नेता लोग न करें तो अच्छा है।

नदियां प्रकृति ही जोड़ती है। गंगा कहीं से निकली, यमुना कहीं से निकली। अगर ऊपर हेलिकॉप्टर से देखें तो एक ही पर्वत की चोटी से ठीक नीचे दो बिन्दु दिखेंगे। वहां उनमें गंगोत्री और यमुनोत्री में बहुत दूरी नहीं है। प्रकृति उन्हें वहीं जोड़ देती। लेकिन सब जगह अलग-अलग सिंचाई करके दोनों कहां मिलें, यह प्रकृति ने तय किया था। तब वहां संगम बना। उसके बाद डेल्टा की भी सेवा करनी है नदी को।

जब दामोदर नदी पर बांध बन रहा था, तब कपिल भट्टाचार्य नाम के इंजीनियर थे। वे किसी वैचारिक संगठन से नहीं जुड़े थे। लेकिन वे नदी से जुड़े हुए आदमी थे। उन्होंने अपने विभाग से अनुरोध किया कि दामोदर नदी घाटी योजना को रोक लें। लोगों ने कहा कि तुम क्यों इसे रोकना चाहते हो। इतने करोड़ की योजना है। इससे यह लाभ, वह लाभ होगा। इससे औद्योगिक विकास होगा।

भट्टाचार्य ने कहा था कि दामोदर का प्रवाह रोकोगे तो वहां से नीचे डेल्टा तक असर होगा। कोलकाता बंदरगाह नष्ट होगा। उसमें जहाज नहीं आ पाएंगे। उसकी गहराई कम हो जायेगी। जिस प्रवाह से सिल्ट बाहर आती है, उसे महंगे यंत्रों के जरिए बाहर निकालना पड़ेगा। तब आपको बंदरगाह बदलना पड़ेगा। तब तक बांग्लादेश नहीं बना था। भट्टाचार्य ने यह भी कहा था कि इस बांध के कारण पड़ोसी देश के भी साथ आपके संबंध बिगड़ते जायेंगे।

तटबंध और टेक्नोलॉजी से समुद्र का कोई संबंध नहीं होता, वह अपनी विशेष शक्ति रखता है। उसमें मनुष्य हस्तक्षेप करे, विज्ञान के विकास के नाम पर तो सचमुच प्रकृति उसे तिनके की तरह उड़ा देती है। सुंदरवन ऐसे ही समुद्री तूफानों को रोकते हैं। पाराद्वीप का सुंदरवन नष्ट हुआ इसलिए उड़ीसा में चक्रवात आया। इसके आगे 'सुपर' विशेषण लगाना पड़ा था। अथाह जन-धन की हानि हुई। अथाह बर्बादी।

यह सब देखकर लगता है कि प्रकृति के खिलाफ अक्षम्य अपराध हो रहे हैं। इनको क्षमा नहीं किया जा सकता। इसकी कोई सजा भी नहीं दी जा सकती। नदी जोड़ना उस कड़ी में सबसे भयंकर दर्जे पर किया जाने वाला काम होगा। इसको बिना कटुता के जितने अच्छे ढंग से समझ सकते हैं, समझना चाहिए। नहीं तो कहना चाहिए कि भाई अपने पैर पर तुम कुल्हाड़ी मारना चाहते हो तो मारो लेकिन यह निश्चित पैर कुल्हाड़ी है। ऐसा कहने वालों के नाम एक शिलालेख में लिख कर दर्ज कर देने चाहिए और कुछ विरोध नहीं हो सकते तो किसी बड़े पर्वत की चोटी पर यह शिलालेख लगा दें कि भैया आने वाले दो सौ सालों तक के लिए अमर रहेंगे ये नाम। इनका कुछ नहीं किया जा सका।

मैं सर विलियम वेलॉक नामक अंग्रेज अधिकारी को याद करना चाहूंगा। 1938 में बंगाल प्रेसीडेंसी के इंजीनियरों के सामने उन्होंने छः भाषण दिये। वेलॉक ने अपने सभी युवा अधिकारियों के सामने कहा था कि 70-80 साल में अंग्रेजों ने जो नहरें बनायी हैं, उनका आर्थिक लाभ एक पलड़े पर रखो और नुकसान दूसरे पर, तो नुकसान का पलड़ा कहीं ज्यादा भारी है। हमने पूरे बंगाल की सोनार-संस्कृति को नष्ट किया है। वेलॉक ने कहा था कि उत्पादन घटा है नहरों के आने के बाद।

मध्य प्रदेश में तवा बंध को लेकर यही हुआ। 1973-74 के समय विवाद के कारण नर्मदा पर बांध नहीं बन सकते थे तो तवा पर बांध बनाया गया। इस बांध के कारण खेतों में दलदल हो गया। खेती बर्बाद हो गयी। काली मिट्टी वाले इलाके में, जहां अनाज भारी मात्रा में होता था, तबाही मच गयी।

जर्मन विकास बैंक ने इस तबाही के कारण बदनामी को देखते हुए तवा बांध पर लगाये गये पैसे वसूलने की भी जरूरत नहीं समझी और चुपचाप खाता बंद कर दिया और दृश्य से ही गायब हो गया। उस समय अकेले गांधीवादी बनवारीलाल चौधरी ने तवा बांध का विरोध किया। फिर बांध के कारण आयी विपदा से मुक्ति के लिए मिट्टी बचाओ आंदोलन शुरू किया। ऐसा ही अभियान अब नदियों की रक्षा के लिए चलाना होगा।

वेलॉक ने अस्सी-नब्बे साल पहले कहा था कि नदियों के प्रवाह कम होने से उत्पादन घटा है। बाढ़ की सम्भावना बढ़ी है। खारापन, लवणीकरण इस इलाके में बढ़ा है। उन्होंने एक और आश्चर्यजनक तथ्य बताया था कि मलेरिया का प्रकोप इस इलाके में केवल नदियों को छेड़ने के बाद आया है।

नदी जोड़ो योजना से पूरे डेल्टा के इलाके में यह सब और बढ़ेगा। आजादी से थोड़ा पहले बंगाल के सिंचाई विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों के सामने प्रो. मजूमदार का एक भाषण भी महत्त्वपूर्ण है। मजूमदार ने कहा था कि यह मानने की गलती या बेवकूफी न करो कि नदी का पानी समुद्र में 'बर्बाद' जाता है। समुद्र में जाकर ये नदियां हम पर उपकार करती हैं, इसलिए इनको देवी माना गया है।

राज-रोग क्या होता है और इससे निपटने का एक ही तरीका होता है। जब राज हाथ से जाता है तो यह रोग भी चला जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण रामकृष्ण हेगड़े का है। कर्नाटक में पचीस साल पहले बेड़धी नदी पर एक बांध बनाया जा रहा था। किसानों को इस बांध के बनने से उनकी खेती के→

पर्यावरणीय आपदा और गांधी की प्रासंगिकता

❑ एम. आर. राजगोपालन

पर्यावरण का दिनोंदिन क्षरण हो रहा है। इसके लिए धन्यवाद देना होगा। हमारी जीवन-शैली और प्रगति-विकास की सतत आराधना को जिससे यह स्थिति बद से बदतर होती जा रही है।

गांधीजी ने इस संबंध में विशिष्ट रूप से कुछ लिखा नहीं है क्योंकि पर्यावरण का क्षरण उस समय समस्या नहीं थी। पर इसे हम उनके लेखन में पा सकते हैं। एक बार जब उन्हें मानवता पर एक संदेश देने के लिए कहा गया तब उन्होंने कहा, ''मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।'' गांधीजी के लेखनों, उनके भाषणों और उनके जीवन से हम जो भी चाहते हैं, प्राप्त कर सकते हैं।

मानव की प्रगति और सड़क के विकास ने प्रकृति के क्षरण में योगदान दिया है। मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति का अत्यधिक शोषण-दोहन किया है। इस प्रकार का विकास प्रकृति के संरक्षण के लिए उपयुक्त नहीं है। जेम्स मॅकहाल के शब्दों में, इस ग्रह ने जिन जीवों की मेजबानी की है उन सभी में मानव सबसे घातक जीव साबित हो गया है। पर्यावरण के क्षरण के बारे में जागरूकता की शुरुआत दशक में होने लगी थी। पुस्तकों-सम्मेलनों आदि के माध्यम से इस जागरूकता के स्वरूप को विस्तार देने का काम होने लगा। यह महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक जिम्मेदार व्यक्ति पर्यावरण के क्षरण को लेकर चिन्तित व घबराया हुआ है। अब हमें एक अर्थपूर्ण समाधान दिखाई दे रहा है। यहां हम सभी को महात्मा के उपदेशों से कुछ आशा की किरण दिखलायी पड़ रही है।

पश्चिमी परम्परा के अनुसार मानव को पृथ्वी के बाहर से आयी वस्तु माना गया है, जिसे विजेता बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। वही भारतीय परम्परा के अनुसार पृथ्वी उसकी माता है और वह उसका आदर करता है। गांधीजी हमारी परम्परा से बहुत अधिक प्रभावित थे, इसलिए उन्होंने सत्य और अहिंसा पर जोर दिया। गांधीजी के शब्दों में ''मानव के पास जीवन-निर्माण की कोई शक्ति नहीं है इसलिए उसे जीवन को नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है।''

यदि पर्यावरण के क्षरण से बचाना है तो हमें मशीनों के प्रयोग को कम से कम या बंद करना होगा। स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान गांधीजी द्वारा प्रचारित खादी व ग्रामोद्योग आज भी प्रासंगिक हैं। हमें गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों को पढ़ना चाहिए। हरिजनों और महिलाओं को आज भी हमारे समाज में समानता का अधिकार नहीं मिला है। ग्रामीण भारत में अब भी स्वास्थ्य और पोषण की समस्या बनी हुई है। रचनात्मक कार्यक्रमों में जीवन के कई अन्य पहलुओं पर विचार किया गया है। इनमें से उनकी कुछ कल्पनाओं को आधार बनाकर पर्यावरण संरक्षण के पहले चरण की शुरुआत करनी चाहिए।

गांधीजी के ग्यारह व्रत, अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, लोभ न करना, शारीरिक श्रम, संयम, धार्मिक सौहार्द, निर्भयता, स्वदेशी तथा अस्पृश्यता निर्मूलन भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में इन प्रत्येक व्रतों की विशिष्टताओं को पर्यावरण के संरक्षण से जोड़कर देखा जा सकता है। मैं यहां गांधीजी की उस प्रसिद्ध उक्ति को दोहराने का मोह छोड़ नहीं सकता हूं ''पृथ्वी के पास हमारी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त संपदा है, न कि हमारे लोभ के लिए।'' क्या यह पर्यावरण की आपदाओं से इस पृथ्वी को सुरक्षित रखने के लिए महान संदेश नहीं है? ❑

→चक नष्ट होने की आशंका हुई। उन्होंने इसका विरोध किया। कर्नाटक के किसानों ने संगठन बनाकर सरकार से कहा कि उन्हें इस बांध की जरूरत ही नहीं है। संपन्नतम खेती वे बिना बांध के ही कर रहे हैं, और इस बांध के बनने से उनका सारा चक नष्ट हो जायेगा। हेगड़े उस आंदोलन के अगुवा बने। पांच साल तक वे इस आंदोलन का एक छत्र नेता रहे। बाद में राज्य के मुख्यमंत्री बने।

मुख्यमंत्री बनने के बाद हेगड़े बेड़धी बांध बनाने के पक्ष में हो गये। लोगों ने कहा कि आप तो इस बांध के प्रमुख विरोधियों में से थे। उन्होंने कहा, तब मैं सरकार में नहीं था। अभी मुझे पूरे कर्नाटक की जरूरत दिखायी देती है। क्षेत्र विशेष में अब मेरी दिलचस्पी नहीं है। उससे उनको नुकसान भी होगा तो भोगने दो। लेकिन कर्नाटक को इतनी बिजली मिलेगी जितनी जरूरत है। औद्योगीकरण होगा।

हेगड़े के पाला बदलने के बावजूद किसानों का आंदोलन चलता रहा। हेगड़े का राज चला गया। उनका राज-रोग भी चला गया। लेकिन किसानों का आंदोलन चलता रहा। आंदोलन के कारण ही वह बांध आज भी नहीं बन सका। देश में इस तरह का यह पहला उदाहरण है।

जिनका दिल देश के लिए धड़कता है उन्हें नदी जोड़ो परियोजना पर प्रेमपूर्वक बात करनी चाहिए। जरूर कहीं कोई-न-कोई सुनेगा। यह दौर बहुत विचित्र है और इस दौर में सब विचारधाराएं और हर तरह का राजनीतिक नेतृत्व सर्वसम्मति रखता है सिर्फ विनाश के लिए। उन सब में रजामंदी है विनाश के लिए। और किसी चीज में एक-दो वोट से सरकार गिर सकती है, पलट सकती है, बन सकती है, बिगड़ सकती है। लेकिन इस विकास और विनाश वाले मामले में सबकी गजब की सर्वसम्मति है।

इस सर्वसम्मति के बीच में हमारी आवाज दृढ़ता और संयम से उठानी चाहिए। जो बात कहनी है, वह दृढ़ता से कहनी पड़ेगी। प्रेम से कहने के लिए हमें तरीका निकालना पड़ेगा। हमें अब सरकार के पक्ष को समझने की कोई जरूरत नहीं है। उसे समझने लगें तो ऐसी भूमिका हमें थका देगी। हम कोई पक्ष नहीं जानना चाहते। हम कहना चाहते हैं कि यह पक्षपात है देश के साथ, देश के भूगोल के साथ, इतिहास के साथ—इनको रोकें। ❑

पर्यावरण-प्रदूषण : नियंत्रण के उपाय

❑ डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर

प्रकृति में उपस्थित सभी प्रकार के जीवधारी अपनी वृद्धि, विकास तथा सुव्यवस्थित एवं सुचारु जीवन-चक्र को चलाते हैं। इसके लिए उन्हें 'संतुलित वातावरण' पर निर्भर रहना पड़ता है। वातावरण का एक निश्चत संगठन होता है तथा उसमें सभी प्रकार के जैविक एवं अजैविक पदार्थ एक निश्चित अनुपात में पाए जाते हैं। ऐसे वातावरण को 'संतुलित वातावरण' कहते हैं। कभी-कभी वातावरण में एक या अनेक घटकों की प्रतिशत मात्रा किसी कारणवश या तो कम हो जाती है अथवा बढ़ जाती है या वातावरण में अन्य हानिकारक घटकों का प्रवेश हो जाता है, जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण हो जाता है। यह प्रदूषित पर्यावरण जीवधारियों के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है। यह हवा, पानी, मिट्टी वायुमंडल आदि को प्रभावित करता है। इसे ही 'पर्यावरण प्रदूषण' कहते हैं।

'इस प्रकार पर्यावरण प्रदूषण, वायु, जल एवं स्थल की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में होने वाला यह अवांछनीय परिवर्तन है, जो मानव एवं उसके लिए लाभकारी तथा अन्य जंतुओं, पेड़-पौधों, औद्योगिक तथा दूसरे कच्चे माल इत्यादि को किसी भी रूप में हानि पहुंचाता है।'

दूसरे शब्दों में, 'पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक घटकों में होने वाला किसी भी प्रकार का परिवर्तन 'पर्यावरण प्रदूषण' कहलाता है।'

'प्रदूषण एक प्रकार का अत्यंत धीमा जहर है, जो हवा, पानी, धूल आदि के माध्यम से न केवल मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उसे रुग्ण बना देता है, वरन् जीव-जंतुओं, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और वनस्पतियों को भी सड़ा-गलाकर नष्ट कर देता है। आज अर्थात् प्रदूषण के कारण ही विश्व में प्राणियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। इसी कारण बहुत से प्राणी, जीव-जंतु, पशु-पक्षी, वन्य प्राणी इस संसार से विलुप्त हो गए हैं, उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। यही नहीं प्रदूषण अनेक भयानक बीमारियों को जन्म देता है। कैंसर, तपेदिक, रक्तचाप, शुगर, एंसीफिलायटिस, स्नोलिया, दमा, हैजा, मलेरिया, चर्मरोग, नेत्ररोग और स्वाइन फ्लू, जिससे सारा विश्व भयाक्रांत है, इसी प्रदूषण का प्रतिफल है। आज पूरा पर्यावरण बीमार है। हम आज बीमार पर्यावरण में जी रहे हैं। अर्थात् हम सब किसी-न-किसी बीमारी से ग्रसित हैं। आज सारे संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो बीमार न हो। प्रदूषण के कारण आज बहुत बड़ा संकट उपस्थित हो गया है। यूरोप के यंत्र-प्रधान देशों में तो वैज्ञानिकों ने बहुत पहले ही इसके विरुद्ध चेतावनी देनी शुरू कर दी थी, परंतु उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। फलतः आज सारा विश्व इसके कारण चिंतित है। सन् 1972 में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, इस समस्या के निदान के लिए विश्व के अनेक देशों ने मिलकर विचार किया, जिसमें भारत भी सम्मिलित था।

विज्ञान का उपयोग, प्रकृति का अंधाधुंध दोहन, अवैध खनन, गलत निर्माण तथा विनाशकारी पदार्थों के लिए किया जा रहा है। इससे वातावरण प्रदूषित होता जा रहा है। प्रकृति और प्राणीमात्र का जीवन संकट में पड़ गया है। पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले अनेक प्रमुख प्रदूषक हैं, इन पर चर्चा करने से पहले हम यह जान लें कि प्रदूषक पदार्थ किसे कहते हैं?

प्रदूषक पदार्थ : प्रदूषण के लिए उत्तरदायी पदार्थों को प्रदूषक पदार्थ कहते हैं। प्रदूषक वे पदार्थ हैं, जिन्हें मनुष्य बनाता है, उपयोग करता है और अंत में शेष भाग को या शेष सामग्री को जैवमंडल या पर्यावरण में फेंक देता है। इसके अंतर्गत रासायनिक पदार्थ धूल, अवसाद तथा ग्रिट पदार्थ, जैविक घटक तथा उनके उत्पाद, भौतिक कारण जैसे ताप आदि सम्मिलित हैं, जो पर्यावरण पर कुप्रभाव डालते हैं।

परिभाषा : कोई ठोस, तरल या गैसीय पदार्थ, जो इतनी अधिक सांद्रता में उपस्थित हो कि पर्यावरण के लिए क्षतिपूर्ण कारक हो, प्रदूषक कहलाता है। जिन वस्तुओं का हम उपयोग कर एवं निर्माण पश्चात् शेष को फेंक देते हैं, अर्थात् फेंके हुए अवशेष प्रदूषक कहलाते हैं।

पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले प्रमुख पदार्थ हैं—1. जमा हुए पदार्थ जैसे-धुआँ, धूल, ग्रिट, घर आदि। 2. रासायनिक पदार्थ जैसे—डिटर्जेंट्स, आर्सीन्स, हाइड्रोजन, फ्लोराइड्स, फॉस्जीन आदि। 3. धातुएं जैसे-लोहा, पारा, जिंक,सीसा। 4. गैसें जैसे-कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, अमोनिया, क्लोरीन, फ्लोरीन आदि। 5. उर्वरक जैसे—यूरिया, पोटाश एवं अन्य। 6. वाहित मल जैसे- गंदा पानी। 7. पेस्टीसाइड्स जैसे-डी.डी.टी., कवकनाशी, कीटनाशी। 8. ध्वनि। 9. ऊष्मा। 10. रेडियोएक्टिव पदार्थ।

वायु प्रदूषण : वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसें एक निश्चित अनुपात में पायी जाती हैं। वायुमंडल में विभिन्न घटकों में मौलिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाले अवांछनीय परिवर्तन, जो जैवमंडल को किसी-न-किसी रूप में दुष्प्रभावित करते हैं, संयुक्त रूप से वायु प्रदूषक कहलाते हैं तथा वायु के प्रदूषित होने की यह घटना वायु प्रदूषण कहलाती है।

जल प्रदूषण : जल ही जीवन है। जल है तो कल है। जल जीवधारियों के लिए प्रकृति में उपलब्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यौगिक है। हमारे शरीर का लगभग 60 से 80 प्रतिशत भाग जल का बना होता है। हम इस जल को प्रकृति से शुद्ध रूप में प्राप्त करते हैं। आज विश्व की जनसंख्या में लगातार वृद्धि, औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि के कारण शहरों एवं औद्योगिक इकाइयों द्वारा कई प्रकार के हानिकारक पदार्थ जल के साथ बहा दिए जाते हैं, जो नदी, नाले, झरने, तालाब, बांध,

झील और समुद्र में पहुंचकर वहां पर उपस्थित जल को प्रदूषित कर देते हैं।

इस प्रकार के भौतिक एवं रासायनिक संगठन में परिवर्तन हो जाता है और वह जीवधारियों के लिए अनुपयोगी हो जाता है। इसे ही जल प्रदूषण कहते हैं।

ध्वनि प्रदूषण : इसे शोर प्रदूषण भी कहते हैं। अवांछित ध्वनि को शोर कहते हैं। आजकल वैज्ञानिक प्रगति के कारण मोटर गाड़ियों, स्वचालित वाहनों, लाउडस्पीकरों, ट्रैक्टरों, कल-कारखानों, मशीनों का उपयोग काफी अधिक होने लगा है। ये सभी उपकरण एवं मशीनें काफी आवाज उत्पन्न करती हैं। मनुष्य की श्रवण क्षमता 80 डेसिबल होती है।

शोर की तीव्रता का मापन डेसिबल की इकाई में किया जाता है, शोर ध्वनि का यह रूप होता है, जिसे हम सहन नहीं कर पाते। मनुष्य 0 डेसिबल तीव्रता की आवाज को सुनने में सक्षम होता है। 25 डेसिबल पर शांति का वातावरण होता है। 80 डेसिबल से अधिक शोर होने पर मनुष्य में अस्वस्थता आ जाती है या बेचैनी होने लगती है तथा 130-140 डेसिबल का शोर अत्यंत पीड़ादायक होता है। इससे अधिक शोर होने पर मनुष्य में बहरा होने का खतरा होता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण व्यक्ति अनिद्रा, सिरदर्द, थकान, हृदय रोग, रक्तचाप आदि का शिकार हो जाता है। किसी व्यक्ति के लगातार 8 घंटे तक 80-90 डेसिबल की ध्वनि में रहने से उसमें बहरापन शुरू हो जाता है।

मृदा प्रदूषण : मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपरी उपजाऊ परत होती है, जिस पर पौधों के लिए यह मृदा अत्यधिक आवश्यक होती है, क्योंकि पौधे मृदा से ही जल एवं खनिज लवणों का अवशोषण करते हैं। शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण इनके अनुपयोगी पदार्थों ने मृदा को प्रदूषित कर दिया है। इनके कारण मृदा की उपजाऊ शक्ति कम होती जा रही है तथा उसमें रहने वाले जीव-जंतुओं पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। विभिन्न प्रकार के उर्वरक एवं कीटनाशक दवाइयां मृदा को प्रदूषित कर रहे हैं।

मृदा प्रदूषण पर नियंत्रण : 1. मृत प्राणियों, घर के कूड़ा-करकट, गोबर आदि को दूर गड्ढे में डालकर ढँक देना चाहिए। हमें चाहिए कि खेत आदि में शौच कार्य न करें। 2. मकान व भवन, सड़क से कुछ दूरी पर बनाना चाहिए। मृदा अपरदन को रोकने के लिए आस-पास घास एवं छोटे-छोटे पौधे लगाना चाहिए। घरों में साग-सब्जी उपयोग करने के पहले धो लेना चाहिए। 3. गांवों में गोबर गैस संयंत्र अर्थात् गोबर द्वारा गैस बनाने को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे ईंधन के लिए गैस भी मिलेगी तथा गोबर खाद भी। 4. ठोस पदार्थ अर्थात् टिन, तांबा, लोहा, कांच आदि को मृदा में नहीं दबाना चाहिए।

रेडियोधर्मी प्रदूषण : ऐसे विशेष गुण वाले तत्त्व जिन्हें आइसोटोप कहते हैं और रेडियोधर्मिता विकसित करते हैं, का वातावरण में फैल जाना, जिससे मानव, जीव-जंतु, वनस्पतियों एवं अन्य पर्यावरणीय घटकों की हानि होने की संभावना रहती है। इसे नाभिकीय प्रदूषण या 'रेडियोधर्मी प्रदूषण' कहते हैं।

रेडियोधर्मी प्रदूषण का नियंत्रण : 1. परमाणु ऊर्जा उत्पादक यंत्रों की सुरक्षा करनी चाहिए। 2. परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबंध लगाना चाहिए। 3. गाय के गोबर से दीवारों पर पुताई करनी चाहिए। 4. गाय के दूध के उपयोग से रेडियोधर्मी प्रदूषण से बचा जा सकता है। 5. सरकारी संगठनों एवं गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से जनजागरण करना चाहिए। 6. वृक्षारोपण करके रेडियोधर्मिता के प्रभाव से बचा जा सकता है। 7. रेडियोधर्मी पदार्थों का रिसाव सीमा में हो तथा वातावरण में विकिरण की मात्रा कम करनी चाहिए।

तापीय प्रदूषण : ऊर्जा के प्रमुख साधनों में एक ऊर्जा है ताप-ऊर्जा। ताप ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए सामान्यतः कोयले को जलाया जाता है, जिससे उत्पन्न ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदल दिया जाता है। लेकिन इस प्रक्रिया में जब कोयले को जलाया जाता है तो इससे बहुत-सी ऐसी गैसें निकलती हैं, जो वातावरण को प्रदूषित करती हैं। ये गैसें प्रमुख रूप से कार्बन मोनोऑक्साइड, फ्लाइऐश, सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन इत्यादि होते हैं, इनका सांद्रण वातावरण में बढ़ता है और प्रदूषण फैलाते हैं, इसे ही ताप प्रदूषण कहते हैं।

ताप प्रदूषण हमारे वातावरण में उपयोग के पश्चात् कुछ पदार्थों से ऊष्मा उत्पन्न होती है, जिसके कारण पर्यावरण का ताप बढ़ जाता है, इसे ही तापीय प्रदूषण कहते हैं। ताप विद्युत संयंत्र सामान्यतः तापीय प्रदूषण के प्रमुख कारण होते हैं।

ताप प्रदूषण को रोकने के उपाय : 1. तापशक्ति केन्द्रों से निकलने वाले अनुपयोगी पदार्थों का समुचित उपयोग होना चाहिए। 2. तापशक्ति केन्द्रों की गैसों का पुनः अन्य कार्यों में उपयोग होना चाहिए। 3. इन केन्द्रों में कार्यरत कर्मचारियों को प्रदूषण की जानकारी देते हुए उससे बचने के उपाय बताना चाहिए। 4. वाहनों में उचित मापदंड के अनुसार ईंधन भरना चाहिए।

समुद्रीय प्रदूषण : पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग जल है। कुल जल का 97.25 प्रतिशत भाग समुद्र के रूप में पाया जाता है। इसमें 3.5 प्रतिशत घुलित पदार्थ पाए जाते हैं।

समुद्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे पदार्थों का मिलना, जिसके कारण हानिकारक प्रभाव उत्पन्न हो सके, जिससे मनुष्य, जीव-जंतु पर संकट उत्पन्न हो और समुद्र की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़े तो इसे समुद्रीय प्रदूषण कहते हैं।

नदियों द्वारा लाये गये अधिक मात्रा में वाहित मल, कूड़ा-कचरा, कृषिजन्य कचरा, भारी धातुएं, प्लास्टिक पदार्थ, पीड़कनाशी, रेडियोधर्मी पदार्थ, पेट्रोलियम पदार्थ इत्यादि के समुद्र में आने से समुद्रीय वातावरण प्रदूषित हो जाता है, इसी को हम समुद्रीय प्रदूषण कहते हैं।

समुद्रीय प्रदूषण की रोकथाम : 1. घरेलू अपशिष्ट, औद्योगिक बहिःस्राव, रेडियोधर्मी पदार्थ आदि को किसी भी प्रकार से समुद्र में नहीं जाना चाहिए। इनकी व्यवस्था→

बाढ़, सिंचाई और नीति-निमंत्रित आपदाएं

❑ दिनेश कुमार मिश्र

महाभारत का एक प्रसंग है कि युद्ध के बाद पितामह भीष्म अपनी शर-शय्या पर लेटे हुए अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास पांडव नियमित रूप से राजनीति सीखने के लिए आया करते थे। एक दिन युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से उन विभिन्न प्रकार की संधियों के बारे में पूछा जो दो राजाओं के बीच हो सकती है। भीष्म ने इस विषय पर बात करते हुए पांडवों को समुद्र और उसकी पत्नियों, नदियों की एक कहानी सुनायी।

एक दिन समुद्र ने अपनी सभी पत्नियों को बुलाकर कहा, ''नदियो! मैंने देखा है कि बाढ़ के समय तुम अपने किनारों तक लबालब भर जाती हो और बड़े-बड़े पेड़ों को उनकी जड़ों और शाखाओं समेत उखाड़ कर अपने प्रवाह में ले जाती हो पर तुम्हारे प्रवाह में कभी बेंत का वृक्ष दिखायी नहीं पड़ता। बेंत तो बहुत ही दुर्बल और साधारण-सी वनस्पति है। उसकी अपनी कोई शक्ति नहीं होती और यह तुम्हारे किनारों पर उगता है। फिर भी तुम इसे लेकर कभी मेरे पास नहीं आयी। तुम इसे तुच्छ समझ कर इसकी अवहेलना करती हो या इसने कभी तुम्हारा उपचार किया है। (जिससे तुम इसका पक्ष लेती हो)। मैं तुमसे यह सुनना चाहता हूं कि वहां यह पेड़ तुम्हारे किनारों को नहीं छोड़ता और यहां नहीं आता है?''

गंगा ने उत्तर दिया, ''हे नदियो के स्वामी! बड़े वृक्ष अपनी शक्ति के गर्व में हमारी तीव्रता के आगे झुकते नहीं हैं। अपनी अकड़ कर खड़े होने की प्रवृत्ति के कारण ही उनका विनाश होता है और उन्हें अपना स्थान छोड़ना पड़ता है। परंतु बेंत ऐसा नहीं होता। बेंत हमारी तीव्र धारा के सामने नत-मस्तक हो जाता है और जब नदी शांत हो जाती है तो वह पुनः अपने स्थान पर स्थित हो जाता है। बेंत समय को पहचानता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है। वह हमेशा हमारी मुट्ठी में रहता है और कभी भी उच्छृंखल व्यवहार नहीं करता है। उसमें अकड़ लेशमात्र भी नहीं है। और यही कारण है कि उसे स्थान-च्युत नहीं होना पड़ता। वह पेड़-पौधे, वह लताएं जो वायु अथवा नदियों की शक्ति के आगे नमन करती हैं और उनका वेग शांत होने पर ही अपना सिर उठाती हैं, उनका कभी विनाश नहीं होता।''

भीष्म ने कहा, ''जब विद्वान राजा यह सुनिश्चित कर लेता है कि उसका प्रतिद्वंद्वी उससे ज्यादा बलवान है तब उसे बेंत की तरह नम्र होकर बलवान के सामने झुक जाना चाहिए। बुद्धिमत्ता उसी में है...।'' भीष्म वैसे तो पांडवों को संधि के आयाम सिखा रहे थे पर इसी के साथ उन्होंने पर्यावरण के संरक्षक का एक महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ाया। यह उदाहरण देकर नदियों के साथ व्यवहार करने का शायद यह पहला संदेश था।

अब बात करते हैं साल 2013 की बाढ़ की। यहां की गंगा घाटी (मुख्यतः भागीरथी, अलकनंदा तथा मंदाकिनी) में जोरों की बारिश 15 जून को शुरू हुई और यह दौर 19 तक अनवरत चलता रहा जिसे साधारण भाषा में बादल फटना कहते हैं। हिमालय का यह क्षेत्र महज भुरभुरी मिट्टी-ढेर पर है जिस पर इस दरजा बारिश का असर सामान्य अनुभव से ही समझा जा सकता है। जून के महीने में 13 से लेकर 19 तारीख तक की जो बारिश के आंकड़े उपलब्ध हैं उनके अनुसार इस दौरान वर्षापात साधारणतः 2 से 40 मिलीमीटर के बीच रहा करता है जब कि इसी समय इन इलाकों में 150 मि. मी. से लेकर 380 मि. मी. के आसपास बारिश हो गयी। इस परिस्थिति से निपटने के लिए कोई भी तैयार नहीं था, न वहां स्थानीय बाशिंदे और न ही बाहर से आये तीर्थयात्री जिनके इन केन्द्रों तक आने का मौसम मई महीने के अंत से लेकर अक्टूबर के मध्य तक रहता है। राज्य की अर्थ-व्यवस्था का एक बहुत बड़ा भाग इसी दौरान उपार्जित होता है। सामान्य से दस गुना बारिश जब इस क्षेत्र में हुई तो पहाड़ों की भुरभुरी मिट्टी में वर्षा के कारण गति आयी और पानी, मिट्टी और उसमें समाए पत्थरों ने नीचे की तह पकड़ी। बरसात के मौसम में साधारण वर्षा के समय में इन नदियों से आंख मिलाना संभव नहीं होता। इनमें अगर सामान्य से दस गुना ज्यादा पानी आ जाए फिर आंखें बंद ही हो जायेंगी। उस पर से वेग इतना कि पत्थर तिनके जैसे बहने लगे।

इस वेगवान प्रवाह के सामने जो कुछ आया उसे इन नदियों ने समुद्र तक पहुंचा देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जो पहाड़ों से धंसने वाली मिट्टी और उसके साथ आने वाला गार उस पत्थर से दूर थे और जिनका नदियों में सुरक्षात्मक फासला था वह चुपचाप अपना सब कुछ लुटने का तमाशा देखते रहे। मगर जो इतने भाग्यशाली नहीं थे उनका

→पास ही किसी दूरी पर कर देनी चाहिए। 2. टैंकरों, पाइपलाइनों, तेल परिवहनों आदि से रिसाव को रोकना चाहिए। 3. कृषिजन्य कचरा जो रासायनिक पदार्थ होते हैं, उन्हें नदी के बहाव के पूर्व रोक देना चाहिए, ताकि वे समुद्र तक न पहुंच सकें।

औद्योगीकरण, शहरीकरण अवैध खनन, विभिन्न स्वचालित वाहनों, कल-कारखानों, परमाणु परीक्षणों आदि के कारण आज पूरा पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। इसका इतना बुरा प्रभाव पड़ा है कि संपूर्ण विश्व बीमार है। पर्यावरण की सुरक्षा आज की बड़ी समस्या है। इसे सुलझाना हम सब की जिम्मेदारी है। इसे हमें प्रथम प्राथमिकता प्रदान करना चाहिए तथा पर्यावरण की सुरक्षा में सहयोग देना चाहिए।

''स्वच्छ पर्यावरण आज की जरूरत है, पर्यावरण निरोग तो हम निरोग।'' ❑

तो ऐसा गंगा-लाभ हुआ, जिसकी उनके परिवार वाले ने कल्पना भी नहीं की होगी। कितने लोग मारे गए, कितने घर नदी की धारा में बहे और कितने दब गए, सैकड़ों सालों की मेहनत से बने खेत और हजारों जानवरों की जल-समाधि या पहाड़ों के खिसकने से बन गये कब्र। खुलासा कब हो पता नहीं। यह सब अब आंकड़े बन चुके हैं और कहीं नहीं बने हैं वह अब बन जायेंगे या फिर कभी न बनें। राज्य के मुख्यमंत्री पहले ही बयान दे चुके हैं कि इस बाढ़ से होने वाली पूरी क्षति का शायद ही अंदाजा लग सके। जब समरथ अपने हाथ खड़े कर दे तब जबान कहां से खुलेगी? यह लेख लिखे जाने तक की खबर कि हजार से ज्यादा लोग मारे गए हैं और छह हजार के आसपास लोग लापता हैं।

सड़कें नहीं होने की वजह से राहत और बचाव कार्य में बाधा पड़ रही है, ऐसा कहा जाता है। व्यवस्था जिसकी है उसकी विपत्ति से पीड़ित व्यक्ति किस तरह से व्याख्या करता है यह थोड़ा समझने की बात है। हमारे यहां बहुत से परिवारों में निर्जला एकादशी के व्रत पालन का रिवाज है। एक दिन सुबह सूर्योदय से पहले कुछ भी इच्छा अनुसार खा-पी लें और अगले दिन सूर्योदय के बाद फिर तबीयत करके चाहे सो खायें। इस बीच भी फलाहार करने की इजाजत है। इस बात से आश्वस्त रहकर कि अगले दिन सूर्योदय के बाद भोजन पदार्थों की उपलब्धता सुनिश्चित है, एकादशी व्रत को आसान बना देते हैं। फिर भी व्रत के कठोर नियमों से बच्चे, बूढ़ों, रोगियों और कभी-कभी गर्भवती महिलाओं को मुक्त देखा जाता है। अब उस दृश्य की कल्पना करें जिसमें आपके सामने नदी में लाशें बह रही हैं, पहाड़ से खिसकती हुई मिट्टी पड़ोसी का घर बहा चुकी है, गांव के किनारे की जमीन कटकर नदी में समा रही है और उसकी छपाक की आवाज आप सुन पा रहे हैं, घर में मां बीमार है, बच्चे भूख से बिलबिला रहे हैं, आप की गाय और बकरियां कहां चली गयीं—पता नहीं। ऊपर से पहाड़ खिसकने का डर जो आपको सिर्फ एक विकल्प है कि आप को दब कर मरना पसंद है यह बहकर तो इस आतंक के साये में शनिवार को आप की क्या गत बनेगी? ऐसे महौल में जो एक दिन भी जिन्दा रहने का पराक्रम दिखा सके, वह हम सभी का आराध्य होने का अधिकारी है और उसकी जिजीविषा हमारे लिए स्तुत्य होनी चाहिए। उसे लिये अगर उसका है कि चला। वह भी जिन्दा है अभी तक जो तीर्थयात्री उत्तराखंड गये होंगे उन्हें यह सुविधा भी नहीं थी। कहते हैं कि सरकार, मीडिया और स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा जो कुछ भी मदद या सुविधा मुहैया हुई वह तीर्थ यात्री केन्द्रित थी। स्थानीय बाढ़ पीड़ित लोग इससे भी वंचित रह गये। अब जब कि प्रायः सभी तीर्थ यात्री वहां से निकाल लिये गए उनमें जितने भी जीवित बचे हों और जिन पर मददगारों की नजर पड़ गयी है तब इतना जरूर होना चाहिए कि स्थानीय लोगों को शिकायत का कोई मौका न मिले।

अब सवाल उठता है कि ऐसा दुबारा न हो इसके लिए क्या किया जाए? यह सच है कि बाढ़, सूखा, भूकम्प, सुनामी, रासायनिक विपदा, न्यूक्लियर कारणों से आयी विपत्ति आदि कितने ही ऐसे मामले हैं जिनमें जानकारों के अनुसार भूकम्प एक ऐसी मुसीबत है जिसकी कोई पूर्व सूचना नहीं दी जा सकती। बाकी सारी विपदाओं की पूर्व-सूचना दी जा सकती है। आजकल आपदा प्रबंधन के शेयर में उछाल आया हुआ है। पिछले दशकों में उत्तरकाशी में लातूर और कच्छ में आये भूकम्प, उड़ीसा का सुपर साइक्लोन, कोसी की 2008 वाली बाढ़ ने इसके भाव को स्थिर कर रखा। सरकार ने केन्द्रीय स्तर से लेकर राज्य और जिला स्तर पर आपदा प्रबंधन के कार्यालय खोले हैं। एन.जी.ओ. के लोग सरकार से कंधे से कंधा मिलाकर इस काम में मदद (?) कर रहे हैं। 2005 में देश स्तर पर आपदा प्रबंधन अधिनियम लागू हुआ। उसके बाद राष्ट्रीय आपदा-प्रबंधन संस्थान की स्थापना हुई। (1995 से 2005 के बीच इसे राष्ट्रीय आपदा-प्रबंधन केन्द्र कहा जाता था)। 2005 के आपदा प्रबंधन अधिनियम के अधीन इस संस्था का काम मानव संसाधन विकास, क्षमता वर्धन, ट्रेनिंग, शोध, दस्तावेज तैयार करना तथा आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में समुचित नीतियों को लागू करने के लिए बहस/पैरवी के काम को आगे बढ़ाना है। यह संस्था विपत्तियों को कम करने और सभी को साथ लेकर विपत्तियों से बचाव की संस्कृति पर काम करने का दावा करती है। जिसके लिए इसके पास आपदा प्रबंध के विभिन्न आयोग के जानकार विशेषज्ञों की एक प्रतिष्ठित टीम है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्था राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के आपदा प्रबंधन केन्द्रों के माध्यम से तकनीकी सहायता प्रदान करती है।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन केन्द्र का दरजा बढ़ कर ही 1999 में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकार के रूप में सामने आया जिससे राहत आधारित आपदा प्रबंधन का स्वरूप राहत से हटाकर आपदाओं पर समेकित तौर पर मुकाबला करने की बात कही और अब आपदाओं की रोकथाम, आपदा निवारण और आपदा पूर्व तैयारी जैसे शब्द व्यवहार में आने लगे। आपदा घटित होने के बाद के कार्यक्रमों में आपदा से तुरंत निपटने के इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर राज्यों और जिलों में भी इकयाइयां स्थापित की गयीं। अधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं की उनके ओहदे के मुताबिक देश-विदेशों में ट्रेनिंग की व्यवस्था हुई और बड़े-बड़े होटलों और सभागारों में गोष्ठियां, सेमिनार आदि और सम्मेलनों का सिलसिला शुरू हुआ जो अभी भी जारी है और पूरी आशा है कि आगे भी चलता रहेगा। एनजीओ इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। इन कार्यक्रमों में सारी सुख-सुविधाओं का भोग होता है, अच्छे लफ्फाजी भरे भाषण होते हैं, क्षेत्र-भ्रमण के नाम पर पिकनिक होती है और पीड़ित समाज की यथास्थिति बनी रहती है क्योंकि जब सचमुच विपत्ति आती है तो इसमें से कोई भी सुविधा-भोगी मौजूद नहीं रहता।

आपदाग्रस्त क्षेत्रों से हटकर के, संपर्क भंग हो जाने के बहाने से वहां जाने से बचते हुए ये लोग भविष्य में राहत कार्य चलाने की जुगत में लग जाते हैं। क्योंकि वहीं इनका उद्देश्य होता है। केवल नाम बदल लेने से इन सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं की कार्यप्रणाली नहीं बदलती। राहत कार्यों में होने वाले घोटालों की बात अब किसी से छिपी नहीं है।

आपदा प्रबंधन अगर सचमुच सुचारु रूप से चलाया जाना हो तो किसी भी दुर्घटना की पूर्व सूचना उसकी बुनियादी ज्ञान होती है। उत्तराखंड में जो कुछ भी हुआ उसकी पूर्व सूचना दी जा सकती थी और यह समय रहते नहीं दी गयी। इसके लिए दो संस्थाएं मुख्य रूप से जिम्मेवार हैं। एक तो राष्ट्रीय मौसम विभाग और दूसरा केन्द्रीय जल आयोग। वर्षापात के आंकड़े मौसम विभाग और नदियों में बहने वाले पानी का हिसाब-किताब केन्द्रीय जल आयोग रखता है। बताते हैं कि मौसम विभाग का कोई भी वर्षा मापी यंत्र केदारनाथ में या उसके ऊपर नहीं है इसलिए मौसम विभाग वर्षा के बारे में कुछ बता ही नहीं सकता। इस बात को राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकार के उपाध्यक्ष श्री शशिधर रेड्डी ने स्वीकार भी किया था। इसलिए बारिश की चेतावनी नहीं दी जा सकती। और केन्द्रीय जल आयोग ने नदियों में बहने वाले बेतरह प्रवाह के प्रति कोई चेतावनी इस बार नहीं दी।

हम ऊपर बता आये हैं कि किस तरह राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकार के अधीन राज्य स्तर पर आपदा-प्रबंधन अधिकार बनाने का प्रावधान है जो राज्य में आपदा प्रबंधन की योजना राज्य और जिला स्तर पर तैयार करता है। उत्तराखंड में न तो इस तरह की कोई योजना बनी है और न उनके मुताबिक कोई नियम-कानून ही परिभाषित है। ऐसे में तलाश धरी की धरी रह गयी और लोग तबाह और बर्बाद होते गये। खनन और पन-बिजली उत्पादन जैसे दो महत्त्वपूर्ण उद्योग हैं। पहाड़ों को खोदकर चूना निकालना 1970-80 के दशक में ही मुहावरा बन गया था। जिसे लोग 'खोदा पहाड़ निकली चूहिया' कहते थे। जंगलों का निवस्त्रीकरण पहले से ही चालू था, खनन से खाल उतारने का काम शुरू किया। बची खुची कसर पन-बिजली योजनाओं ने पूरी कर दी। सड़कों का निर्माण किए बिना इनमें से कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता इसलिए उन्हें बनाने के लिए विस्फोटकों का इस्तेमाल जरूरी था। अब भुरभुरी मिट्टी के पहाड़ों में जिनकी हजामत पहले ही बन चुकी थी, पटाखे फूटे तो सारी मिट्टी नीचे घाटी में नदियों के पास बिना किसी मेहनत के पहुंच गयी जिसकी वजह से कहीं अस्थाई झील बनी, कहीं कटाव हुआ और कहीं अनचाही मिट्टी जमा हुई। बात वहीं खतम हो जाती तो गनीमत थी, जो सड़कें बनीं उनमें पानी की समुचित निकासी की व्यवस्था नहीं हुई जिससे पानी की निकासी में बाधा आयी और सड़कें भी खराब हुईं।

देवभूमि होने के कारण यहां तीर्थ-यात्रियों की भरमार रहती है। वह दिन गये जब यह आस्थावान लोग तमाम तकलीफें उठाते हुए यहां आया-जाया करते थे। अब आस्थावानों की आधी से ज्यादा जगह धनवानों ने दबा ली है। उनके लिए आस्था गौण है, आस्था का दंभ प्रमुख है। ठीक वैसे ही जैसे बहुत से व्यक्तियों, संस्थाओं और प्रतिष्ठानों के लिए सेवा से ज्यादा सेवा का दंभ आकर्षित करता है। ऐसे लोगों की आस्था सुख-सुविधा की बुनियाद पर खड़ी होती है। जब किसी सक्षम व्यक्ति को सुख-सुविधा की जरूरत होगी तो उसे वह सेवा प्रदान करने वाले भी पैदा होंगे। जाहिर है धर्मशालाएं होटलों में बदलेंगी। इन्हीं परिस्थितियों में रिवर व्यू और माउंटेन व्यू का जन्म होता है। रिवर व्यू बनाने के चक्कर में आदमी नदी के पास खतरे को पहचानते हुए भी पहुंचा, वह नहीं जानता था कि गंगा ने ही कह दिया था कि नदियों के प्रवाह के सामने जो अकड़ कर खड़ा होगा उसे वह समुद्र का रास्ता दिखा देगी। नदी ने अपनी बात रखी। उत्तराखंड की त्रासदी इन सारे कारणों का नतीजा है।

(1) अब अगर ऐसा नहीं होने देना हो तो, आपदा प्रबंधन के नाम पर चल रही सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं से यह पूछा जाए कि किसी विपदा के समय अगर हर बार इलाके को सेना और अर्ध-सैनिक बलों पर ही आश्रित रहना पड़ा तो आम जनता की गाढ़ी कमाई से उन जैसे सफेद हाथियों को समाज को क्या फायदा होता है?

(2) केन्द्रीय जल आयोग और भारतीय मौसम विभाग द्वारा किसी भी आसन्न जिम्मेवारी तय भी की जाती है या नहीं?

(3) पर्यावरण विभाग ने जब उत्तराखंड में इतनी पन-बिजली परियोजनाओं को स्वीकृति दी थी तो उसने मौजूदा परिस्थितियों की कल्पना क्यों नहीं की? अगर की थी तो बचाव के लिए क्या प्रावधान किया था?

(4) खनन परियोजनाओं पर लगाम लगाने के क्या कम-से-कम अब कोई व्यवस्था की जाएगी?

(5) वर्षा मापक स्थलों की संख्या में वृद्धि और उनकी निगरानी किए जाने की भविष्य में क्या व्यवस्था होगी?

(6) नदी क्षेत्र के अतिक्रमण को रोकने के लिए क्या कोई कारगर कदम उठाए जायेंगे? यह प्रस्ताव मात्र ही असीमित भ्रष्टाचार को जन्म देगा। इससे निबटने के लिए क्या कदम उठाये जायेंगे।

जब तक इन सवालों का कोई सकारात्मक उत्तर नहीं मिलता है तब तक व्यवस्था से किसी भले की उम्मीद रखना बेमानी होगा। पानी से लिखी हुई तहरीर को पढ़ने के लिए एक दूसरे किस्म की जरूरत है जो लकीर पीटने वालों के पास मुश्किल से ही होती है। हम उम्मीद करते हैं कि हमारी सारी आशंकाएं गलत साबित हों और उत्तराखंड की पूरी आबादी की जीवन-शैली यथाशीघ्र वापस पटरी पर लौट आए। ❑

आखातीज से कीजिए सूखे की अगवानी

❑ अरुण तिवारी

इन्द्र देवता अगले आषाढ-सावन-भादों में कहीं देर से आयेंगे, कहीं नहीं आयेंगे, कहीं उनके आने की आवृत्ति, चमक और धमक वैसी नहीं रहेगी, जिसके लिए वे जाने जाते हैं। वह किसी जगह इतनी देर ठहर जायें कि 2005 की मुंबई और 2006 का सूरत बाढ प्रकरण याद दिला दें। इस संभावना के एक हिस्से पर मौसम विभाग ने अपनी मोहर लगा दी है, कहा है कि वर्ष 2014 का मानसून औसत से पांच फीसदी कमजोर रहेगा। शेष हिस्से पर मोहर लगाने का काम अमेरिका की स्टेनफार्ड यूनिवर्सिटी ने कर दी है। पिछले 60 साल के आंकड़ों के आधार पर प्रस्तुत शोध के मुताबिक दक्षिण एशिया में अत्यधिक बाढ़ और सूखे की तीव्रता लगातार बढ़ रही है। ताप और नमी में बदलाव के कारण ऐसा हो रहा है। यह बदलाव ठोस और स्थायी है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव भारत के मध्य क्षेत्र में होने की आशंका व्यक्त की गयी है। वर्षा औसत में पांच फीसदी गिरावट का आंकड़ा कितना प्रभाव डालेगा, चिन्ता इससे ज्यादा इस प्रश्न का उत्तर तलाशने की है कि हम क्या करें?

मिथक का टूटना जरूरी : जवाब जानने के लिए इस मिथक को तोड़ना जरूरी है कि वर्षा औसत से ज्यादा हो तो बाढ़ और औसत से कम हो तो सूखा लाती है। सत्य यह है कि भारत के जैसलमेर में भारत के राष्ट्रीय वर्षा औसत से अत्यंत कम होती है और चेरापूंजी में कई गुना ज्यादा, बावजूद इसके क्रमशः जैसलमेर में न हर साल सूखा घोषित होता है और न चेरापूंजी में बाढ़। इसका तात्पर्य यह है कि यदि जिस साल, जिस इलाके में वर्षा का जैसा औसत हो, हम उसके हिसाब से जीना सीख लें तो न हमें बाढ़ सतायेगी और न सूखा।

कारण ही निवारण : एक अन्य सत्य है कि बाढ़ हमेशा नुकसानदेह नहीं होती। सामान्य बाढ़ नुकसान से ज्यादा नफा देती है। प्रदूषण का सफाया कर देती है। खेत को उपजाऊ मिट्टी से भर देती है। अगली फसल का उत्पादन दोगुना हो जाता है। बाढ़ नफे से ज्यादा नुकसान तभी करती है, जब अप्रत्याशित हो, आसमान में बादल फट जाये, वेग अत्यंत तीव्र हो, नदी पुराना रास्ता छोड़कर नये रास्ते पर निकल जाये, बाढ़ के पानी में ठोस मलबे की मात्रा काफी ज्यादा हो अथवा जरूरत से ज्यादा दिन ठहर जाये। बाढ़ के बढ़ते वेग, अधिक ठहराव, अधिक मलबे और अधिक मारक होने के कारण भी कई हैं : नदी में गाद की अधिकता, तटबंध, नदी प्रवाह मार्ग तथा उसके जलग्रहण क्षेत्र में परंपरागत जलमार्गों में अवरोध।

मिट्टी और इसकी नमी को अपनी बाजुओं में बांधकर रखने वाली घास व अन्य छोटी वनस्पति का अभाव, वनों का सफाया, वर्षाजल संचयन ढांचों की कमी, उनमें गाद की अधिकता तथा उनके पानी को रोककर रखने वाले पालों-बंधों का टूटा-फूटा अथवा कमजोर होना—ये ऐसे कारण हैं, जो बाढ़ और सूखा... दोनों का दुष्प्रभाव बढ़ा देते हैं। यदि खनन अनुशासित न हो, मवेशी न हों, मवेशियों के लिए चारा न हो, सूखे की भविष्यवाणी के बावजूद उससे बचाव की तैयारी न की गयी हो, तो दुष्प्रभाव का बढ़ना स्वाभाविक है, बढ़ेगा ही। ऐसी स्थिति में सूखा राहत के नाम पर खैरात बांटने के अलावा कोई चारा नहीं बचता। उसमें बंदरबांट हो तो फिर आत्महत्याएं होती ही हैं। ऐसे अनुभवों से देश कई बार गुजर चुका है। गौर करने की बात है कि अकाल पूरे बुंदेलखण्ड में आया, लेकिन आत्महत्याएं वहीं हुईं, जहां खनन ने सारी सीमायें लांघी, जंगल का जमकर सफाया हुआ और मवेशी बिना चारा मरे, बाँदा, महोबा और हमीरपुर।

इंतजार बेकार, तैयारी जरूरी : निष्कर्ष स्पष्ट है कि यदि मौसम विभाग ने सूखे की चेतावनी दी है, तो उसका आना तय मानकर उसकी अगवानी की तैयारी करें। तैयारी सात मोर्चों पर करनी है : पानी, अनाज, चारा, ईंधन, खेती, बाजार और सेहत। यदि हमारे पास प्रथम चारा का अगले साल का पर्याप्त भंडारण है तो न किसी की ओर ताकने की जरूरत पड़ेगी और न ही आत्महत्या के हादसे होंगे। खेती, बाजार और सेहत ऐसे मोर्चे हैं, जिन पर महज् कुछ एहतियात ही काफी होंगे।

तैयार रखें पानी के कटोरे और पौधशाला : आइये, सबसे पहले हम बारिश की हर बूंद को पकड़कर धरती के पेट में डालने की कोशिश तेज कर दें। परंपरागत तौर पर लोग यही करते थे। इसके लिए दो तारीखें तय थीं—कार्तिक में देवउठनी ग्यारस और बैसाख में आखा तीज। ये अबूझ मुहूर्त माने गये हैं। इन दो तारीखों को कोई भी शुभ कार्य बिना पंडित से पूछे भी किया जा सकता है। इन तारीखों में खेत भी खाली होते हैं और खेतिहर भी। ये हमारे पारंपरिक जल दिवस हैं। अतः गांव पानी के इंतजाम के लिए इन तारीखों पर हर वर्ष दो काम अवश्य करता था : देवउठनी ग्यारस को नये जलढांचों का निर्माण और अक्षया तृतीया को पुराने ताल की मिट्टी निकालकर पाल पर डाल देना। अक्षय तृतीया का मतलब ही है कि ऐसी तृतीया, जिस दिन किए कार्य का क्षय नहीं हो।

गौरतलब है कि सूखे की अगवानी की तैयारी का यह सबसे पहला और जरूरी काम

है। पानी के पुराने ढांचों की साफ-सफाई, गाद निकासी और टूटी-फूटी पालों को दुरुस्त करके ही हम जलसंचयन ढांचों की पूरी जलग्रहण क्षमता को बनाये रख सकते हैं। ढांचों में हम अधिकतम पानी रोक सकें तो सूखे का डर कम सतायेगा और बाढ़ भी उतने वेग से नहीं आयेगी। अक्षया तृतीया से इनसान ही नहीं, मवेशियों के लिए भी प्याऊ-शाला लगाने के शुभारंभ का भी रिवाज रहा है। आइये, आज ही शुरुआत करें।

जरूरत भर भंडारण जरूरी : अभी-अभी गेहूं की फसल कटकर घर आयी है। ऐसे खेतिहर परिवार जिनकी आजीविका पूरी तरह खेती पर ही निर्भर है, वे इनका इतना भंडारण अवश्य कर लें कि अगली रबी और खरीफ...दोनों फसलें कमजोर हों, तो भी खाने के लिए बाजार से खरीदने की मजबूरी सामने न आये। यदि गलती से आप धान का घरेलू भंडार खाली कर चुके हों तो अतिरिक्त मोटे अनाज के बदले चावल ले लें, क्योंकि सूखा पड़ा तो चावल के दाम बढेंगे। आलू समेत सभी सब्जियों की कीमतें भी बढेंगी, अतः जो सब्जियां सुखाकर उपयोग के लिए संरक्षित की जा सकती हों, संरक्षित कर लें। कुल मिलाकर अधिक पानी की मांग करने वाली फसलों के उत्पाद अपनी जरूरत के लिए अवश्य बचा रखें। किंतु इसका मतलब कतई नहीं है कि व्यापारी कमाने के लिए जमाखोरी करें।

जमाखोरी और कीमतों पर नियंत्रण : बाजार में जमाखोरी और कीमतों की बढ़ोतरी को नियंत्रित करना तथा सरकारी स्तर पर भंडारण क्षमता व गुणवत्ता का विकास आने वाली नयी सरकार के समक्ष सबसे जरूरी व पहली चुनौती होगी। यह आसान नहीं होगा। यदि वह यह कर सकी तो बधाई का पात्र बनेगी, नहीं तो उसके पक्ष की लहर के खिलाफ बदलते ज्यादा वक्त नहीं लगेगा।

भंडारण व प्रसंस्करण क्षमता का विस्तार : गौरतलब है कि भंडारण गृहों में 100 फीसदी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और शीतगृहों में विशेष कर्ज व छूट योजनाओं के बावजूद कोई विशेष प्रगति देखने को नहीं मिल रही है। गोदामों में अनाजों की बर्बादी के नजारे आज भी आम हैं। भारत में सब्जी तथा फल उत्पादन की 40 प्रतिशत मात्रा महज स्थानीय स्तर पर उचित भंडारण तथा प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव में नष्ट हो जाती है। इसका पुख्ता स्थानीय रोजगार व आर्थिक स्वावलंबन का विकास तो होगा ही, सूखे के नजरिये से भी इस मोर्चे पर पहल सार्थक होगी।

चारे और ईंधन का अतिरिक्त इंतजाम : सूखे का अन्य पहलू यह है कि सूखा पड़ने पर भूख और प्यास के कारण सबसे पहले मौत मवेशियों की होती है। पीने के पानी और चारे के इंतजाम से मवेशियों का जीवन तो बचेगा ही, उनके दूध से हमारी पौष्टिकता की भी रक्षा होगी। इसी तरह ईंधन का पूर्व इंतजाम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कई ऐसे झाड़-झंखाड़, पत्ती व घास, जिन्हें हम बेकार समझकर अकसर जला दिया करते हैं, उन्हें सुखाकर चारे और ईंधन के रूप में संजोने का काम अभी से शुरू कर दें।

समझदार करें फसल चक्र में बदलाव : इसी क्रम में एक जरूरी एहतियात खेती के संदर्भ में है। चेतावनी है कि वर्षा कम होगी। हो सकता है इतनी कम हो कि फसल ही सूख जाये या फूल...फल में बदलने से पहले ही मर जाये। क्या यह समझदारी नहीं होगी कि ऐसे में गन्ना-धान जैसी अधिक पानी वाली फसल के बजाय कम पानी वाली फसलों को प्राथमिकता दें? मोटे अनाज, दलहन और तिलहन की फसलें बोयें? यदि पानी वाली फसलें बोनी ही पड़े तो ऐसे बीजों का चयन करें जिनकी फसल कम दिनों में तैयार होती हो? खेती के साथ बागवानी का प्रयोग करें? वैज्ञानिक कहते हैं कि फसल चक्र में अनुकूल बदलाव की तैयारी जरूरी है। यह समझदारी होगी।

इसके अलावा हमें चाहिए कि हम सब्जी, मसाले, फूल व औषधी आदि की खेती को तेज धूप से बचाने के लिए पॉलीहाउस, ग्रीन हाउस आदि की सुविधा का लाभ लें। खेत में नमी बचाकर रखने के लिए जैविक खाद तथा मल्चिंग जैसे तौर-तरीकों का जमकर इस्तेमाल करें। कृषि, बागवानी, भूजल भंडारण, प्रसंस्करण तथा गृह आदि विभागों को चाहिए कि संबंधित तैयारियों में जिम्मेदारी के साथ सहयोगी बनें।

काम आयेगी सेहत में सतर्कता : सूखा पड़ने पर मौसम और मिट्टी की नमी में आयी कमी सिर्फ खेती को ही चुनौती नहीं देती, हमारी सेहत को भी चुनौती देती है। अतः एहतियाती कदम उठाने के लिए स्वास्थ्य विभाग के अलावा सतर्क तो हमें भी होना ही पड़ेगा। भूलें नहीं कि दूरदृष्टि रखने वाले लोग आपदा आने पर न चीखते हैं और न चिल्लाते हैं, बस! एक दीप जलाते हैं। समय पूर्व की तैयारी एक ऐसा ही दीप है। आइये, प्रज्ज्वलित करें। ❑

अविनाश भाई अस्वस्थ

सर्व सेवा संघ के पूर्व मंत्री एवं प्रकाशन के पूर्व संयोजक श्री अविनाश भाई 1 से 31 मई, 2014 तक 'ग्रामसभा सशक्तीकरण अभियान' में बलरामपुर (छत्तीसगढ़) में रहे। 31 मई, 2014 को बलरामपुर से वाराणसी आने में वे खाईं में गिर पड़े, जिससे उनकी पीठ की तीन हड्डियाँ फैक्चर हो गयीं। हड्डी विशेषज्ञ डॉक्टर का उपचार चल रहा है। डॉक्टर की सलाह के अनुसार उन्हें 2 महीने तक बेडरेस्ट पर रहना है। 3 जून से वे अपने भतीजे के पास लखनऊ में विश्राम कर रहे हैं।

–स.ज. प्रतिनिधि

भूजल संकट : कृषि के लिए घातक

❑ रमाकांत सिंह चंदेल

हमारी अनादिनिधना, अक्षुण्ण व दिव्य भारतीय संस्कृति में आदिकाल से ही जल व कृषि दोनों का ही पर्याप्त स्थान व महत्त्व रहा है। जहां हमारे प्रचीनतम साहित्य वेदों व कालांतर में अष्ठादश पुराणों के कथा-प्रसंगों के अनुसार एक ओर हमारी समूची सृष्टि को क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान् श्रीमन्नारायण के नाभिकमल से उत्पन्न, श्री ब्रह्माजी द्वारा रचित व सृजित माना जाता है, वहीं भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा लोकरक्षण व कृषि-संस्कृति के उन्नयन से संबंधित विविध अनुपम प्रसंग हमारे अष्ठादश पुराणों में यत्र-तत्र-सर्वत्र प्राप्त होते हैं। जहां एक ओर शापित सगर पुत्रों व संपूर्ण मानव-मात्र के कल्याणार्थ महाराज भगीरथ द्वारा पावन सलिला गंगा को धराधाम पर अवतरित कराने का प्रसंग शताब्दियों से हमारे मानस-पटल पर अंकित होता आया है, वहीं दूसरी ओर महाराज जनक द्वारा सपतनिक कृषि-कर्म करते समय प्राप्त पुत्री अवनिसृता जगज्जननी माता सीता को संपूर्ण जगत् के जन्म, पालन व संहार का कारण बताते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी ने उनकी निम्न श्लोक द्वारा वंदना की है-

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।
सर्वेश्रेयस्करीं सीतां नतोहं रामवलल्भाम्॥

(मानस, बालकांड,5)

किसी सुविख्यात लेखक ने कृषि को किसी राष्ट्र के उन्नयन का मूल व दृढ़ आधार माना है—

कृपा कृष्णा की हलधर का हल,
कर्मभूमि पर नूतन हलचल...।

किंतु इनके महत्त्व को अवच्छिन्न बनाए रखने हेतु हमें आधुनिक परिवर्तनशील पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में इनके (कृषि-संपदा व जल-संपदा के) संरक्षण पर पुनर्विचार करना होगा। विशेषकर आधुनिक समय में उत्पन्न भूजल संकट से जिस चिंताजनक स्थिति का जन्म हो रहा है, वह संपूर्ण मानव समाज के लिए प्रतिकूल होने के साथ ही हमें यह सोचने पर विवश करती है कि भारत व समूचे विश्व के वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों व समाजशास्त्रियों द्वारा इस दिशा में पर्याप्त चिंतन व जागृति फैलाने की परम आवश्यकता है।

जल को जीवन का पर्याय माना जाता है। सुप्रसिद्ध गीतकार व संगीतकार रवींद्र जैन ने एक ही वाक्य में यह सिद्ध कर दिया है। उनका कथन है—जल जो न होता तो, ये जग जाता जल।

संपूर्ण जीवधारियों अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षियों व वृक्ष-लताओं के शरीर का लगभग 90 प्रतिशत भाग जल-निर्मित है। जीवन की समस्त क्रियाओं हेतु जल की परम आवश्यकता है। जलाभाव में इन क्रियाओं का निष्पादन सर्वथा असंभव ही है। भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से इस पृथ्वी का तीन चौथाई भाग जलावृत्त है, जिसके पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल राशि का 97 प्रतिशत भाग मौजूद है। किंतु वह जल अत्यधिक लवणयुक्त होने के कारण सुपेय नहीं है, न ही उपयोगी है। पृथ्वी का शेष एक चौथाई भाग भू-आच्छादित है। इलेक्ट्रानिक मीडिया से प्राप्त जानकारी के आधार पर भूमि पर कुल पानी की मात्रा का केवल 3 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है। वैज्ञानिकों का मत है कि पानी की यह मात्रा हिमाच्छादित हिमशिखरों पर बर्फ के रूप में, नदियों में, भूजल के रूप में तथा वायुमंडल में वाष्प के रूप में विद्यमान रहती है।

वर्तमान में कृषि, पशु-पालन, उद्योग-धंधों तथा पेयजल हेतु नदी जल व भूजल का ही सर्वाधिक उपयोग हो रहा है। उक्त उपयोगार्थ नदी जल से पर्याप्त पूर्ति न होने के फलस्वरूप भूजल का पर्याप्त दोहन किया जाता है। फलतः भूजल स्तर 1से 1.5 प्रतिवर्ष के हिसाब से नीचे गिरता जा रहा है। परिणामस्वरूप भूजल के ऊपरी जल स्रोत सूख रहे हैं। अतः जल की आवश्यकता की पूर्ति हेतु भूजल के निचले एवं गहरे जल स्रोतों का दोहन किया जा रहा है। इनमें अधिकांश जल लवणीय गुणवत्ता का मिल रहा है। इसके कारण मृदा स्वास्थ्य खराब होने के कारण फसलोत्पादन व मानव स्वास्थ्य पर इसके अवांछित परिणाम स्पष्ट अनुभव किए जा रहे हैं। इसके साथ ही पानी के भूमि से निकालने की लागत में वृद्धि से फसल की उत्पादन लागत बढ़ती जा रही है।

अतः आज हमारे समक्ष यह विचारणीय प्रश्न है कि हम अपने भूजल स्रोतों को किस प्रकार सुरक्षित रखकर कृषि, मानव व पशुधन के स्वास्थ्य को सुरक्षित बनाए रखें। विज्ञानवेत्ता मानते हैं कि निःसंदेह 'पौधों का प्रथम भोज्य' जल ही है। अतः जल संरक्षण सर्वोपरि है। जल के प्रत्येक बूंद का हमारे जीवन व हमारी कृषि संपदा रक्षण में बड़ा महत्त्व है।

भूजल स्तर के गिरने के कारण : इस समय देश के सभी भागों में जल-स्तर दिन-पर-दिन गिरता जा रहा है। जिसके लिए निम्न कारण जिम्मेदार बताए जाते हैं—

1. अधिक उत्पादन और कम पानी चाहने वाली फसल-प्रजातियों का प्रादुर्भाव : फसलों की नवीनतम बौनी एवं संकर प्रजातियों में सिंचाई जल की अधिक आवश्यकता होती ही है। इन प्रजातियों में अधिक उत्पादन हेतु अधिक मात्रा में पोषण-तत्त्वों की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति रासायनिक उर्वरकों द्वारा की जाती है, परिणामस्वरूप अधिक सिंचाई जलावश्यकता के चलते अधिक मात्रा में भूजल का दोहन या नदियों एवं नहरों के पानी का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है, जो भूजल स्तर के पतन के मूल रूप से उत्तरदायी है।

2. अधिक पानी चाहने वाली नकदी फसलों का उगाया जाना : वर्तमान में हम

कृषि के मूलभूत सिद्धांत 'फसल चक्र' को प्रायः विस्मृत करते जा रहे हैं। अतः हमारे कृषक बंधु केवल अधिक मात्रा में धनार्जन की इच्छा से अधिक पानी चाहने वाली नकदी व अन्य फसलों जैसे आलू, गन्ना, धान, गेहूं इत्यादि का अधिकाधिक उत्पादन कर रह हैं। परिणामस्वरूप इन उत्पादों हेतु अधिक सिंचाई जल की आवश्यकता की पूर्ति की इच्छा से भूजल का दोहन हो रहा है, किन्तु दुख का विषय है कि इसके फलस्वरूप गिरते भूजल स्तर पर बहुत कम लोगों का ध्यान है।

3. बाढ़ सिंचाई विधि का प्रयोग करना : आजकल कृषि के यंत्रीकरण के फलस्वरूप जल के दोहन में अंधाधुंध वृद्धि हो रही है, क्योंकि पंपसेट व ट्यूबवेल द्वारा कम लागत व कम समय में अधिक जल बाहर निकाला जाता है, जिसके कारण हमारे कृषक कृषि फसलों में बाढ़ सिंचाई का प्रयोग करते हैं, अतः इससे भूजल स्तर अधिक तीव्र गति से पतन को प्राप्त हो रहा है।

कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारणों की संक्षिप्त चर्चा अनिवार्य है।

1. जीवांश खाद के प्रयोग का अभाव : जीवांश खादों का प्रयोग न करने से मृदा में उपलब्ध जीवांश कार्बन की मात्रा 0.0 प्रतिशत से 0.5 प्रतिशत के बीच रह गयी है, जबकि स्वस्थ मृदा के लिए जीवांश कार्बन की मात्रा 0.8 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए। खेद का विषय है कि मृदा की जल धारण क्षमता घटाने के कुप्रभाव से भूजल का दोहन हो रहा है।

2. भूजल का रिचार्ज न किया जाना : हरित क्रांति 1966-67 के पश्चात् उच्च उपज हेतु अधिक जल की मांग के फलस्वरूप भूजल दोहन बढ़ गया है, किन्तु जल की मांग के अनुपात में भूजल को पुनर्भरित नहीं किया जा रहा है। राष्ट्रीय आंकड़ों के अनुसार देश में जल विकास की स्थिति 58 प्रतिशत है। अर्थात् 100 लीटर भूजल के दोहन के उपरांत जल स्रोत को मात्र 58 लीटर जल ही लौटाया जा रहा है।

3. प्रतिवर्ष वर्षा की मात्रा का उत्तरोत्तर घटना : ग्लोबल वार्मिंग के परिणामस्वरूप जलवायु में निरंतर परिवर्तन हो रहा है, फलतः वर्षा की मात्रा निरंतर घटती जा रही है, परंतु कृषि फसलों, मानव व पशुओं तथा उद्योगों हेतु भूजल का उपयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। साथ ही मानव, पशुओं व उद्योगों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

4. कृषकों को निःशुल्क विद्युत उपलब्ध कराया जाना : कुछ राज्यों की सरकारें कृषक भाइयों को निःशुल्क विद्युत उपलब्ध करा रही हैं। खेद का विषय है कि हमारे कृषक अनियंत्रित रूप से भूजल का दोहन कर उसका अपव्यय करते जा रहे हैं।

भूजल स्तर के पतन से हानियां : 1. भूजल स्रोतों के सूखने की पूर्णतः संभावना, 2. कृषि फसलों व शाकाहार के लागत मूल्य में वृद्धि की संभावना, 3. हरे चारे की समस्या, 4. दुग्ध उत्पादन में घटोतरी की संभावना।

भूजल स्तर के पतन को रोकने के उपाय : 1. फसल चक्र के सिद्धांत को आत्मसात किया जाए। 2. ड्रिप एवं बौछारी सिंचाई विधि एवं क्यारी विधि अपनायी जाए। 3. जीवाश्म खादों की मात्रा बढ़ाई जाए। 4. भूजल स्तर को (रेन वाटर) से रिचार्ज किया जाए। 5. तालाबों, पोखरों एवं झीलों में रेन वाटर हार्वेस्टिंग की जाए। 6. पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा प्रारंभ की रिवर लिंकेज योजना, 2002 को अपनाया जाए। 7. प्रत्येक गांव, शहर, सड़क के किनारे तथा बंजर भूमि में अधिकाधिक वृक्षारोपण किया जाए। 8. कृषकों को निःशुल्क विद्युत की आपूर्ति न कर उनसे यथोचित विद्युत मूल्य अवश्य ही लिया जाए।

निष्कर्षतः यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि हर परिस्थिति में सिंचाई जल का समुचित प्रयोग एवं प्रबंधन फसलोत्पादनार्थ किया जाए, तभी हमारे देश व परमपावनी पूजनीया वसुंधरा माता की गोद में खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, चारा फसलों, शकाहार इत्यादि के उत्पादन में निरंतर वृद्धि होगी। कृषि संस्कृति के रक्षण व भूजल के संरक्षण के प्रति सारे विश्व को प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता है। अपने द्वारा इस दिशा में कुल प्रयत्नों के फलस्वरूप ही हम यह गर्वोक्ति करने में समर्थ हो सकते हैं—हरे खेत, नहरें नद निर्झर, जीवन शोभा उर्वर।

अतः आइए, हम सभी समवेत प्रयत्नों से भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पर्यावरण के प्रति अपने पुनीत कर्तव्य का शुद्ध अंतःकरण से निर्वाह करें। ❑

वाणी की मर्यादाएँ : सत्य वचन, मित-भाषण

वाणी के उपयोग की मर्यादाओं में एक यह है कि वाणी से हमेशा सत्य-उच्चारण ही होना चाहिए। सत्य की व्याख्या यह है कि जिस चीज को हम सत्य समझते हैं, उसका उच्चारण करना चाहिए। सत्य बदलता जायेगा। आज हमें सत्य का जो दर्शन होता है, उससे भिन्न कल हो सकता है। वाणी में उतना फर्क करना होगा। लेकिन आज सत्य को हम जिस रूप में मानते हैं, उसी रूप में वाणी द्वारा प्रकट करना चाहिए, दूसरे रूप में नहीं। वाणी की यह मर्यादा है कि वह सत्य हो।

दूसरी मर्यादा यह है कि वाणी से मित-भाषण होना चाहिए। शब्द नपा-तुला हो, जिससे कि सत्य में मदद हो। सत्य के लिए यह पथ्य है। जो लोग कम बोलते हैं, वे सत्य ही बोलते होंगे, ऐसी बात नहीं है। छिपाने के लिए भी मित-भाषण हो सकता है, लेकिन छिपाने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि सम्यक चिन्तन के, ठीक चिन्तन के उद्देश्य से मित-भाषण करना वाणी का एक पथ्य है, जिससे मनुष्य की वाणी से सत्य ही निकलता है। इस तरह मित-भाषण सत्य को मदद करनेवाला पथ्य है। **–विनोबा**

खेती की लागत कम करने के उपाय

❑ मणिशंकर उपाध्याय

खेती को लाभदायक बनाने के लिए दो ही उपाय हैं—उत्पादन को बढ़ाएं व लागत खर्च को कम करें। कृषि में लगने वाले मुख्य आदान हैं बीज, पौध-पोषण के लिए उर्वरक व पौध संरक्षण, रसायन और सिंचाई। खेत की तैयारी, फसल काल में निराई-गुड़ाई, सिंचाई व फसल की कटाई-गहाई-उड़ावाई आदि कृषि कार्यों में लगने वाली ऊर्जा की इकाइयों का भी कृषि उत्पादन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इनका उपयोग किया जाना आवश्यक है, परंतु सही समय पर सही तरीके से किये जाने पर इन पर लगने वाली प्रति इकाई ऊर्जा की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इनका अपव्यय रोककर पूर्ण या आंशिक रूप से इनके विकल्प ढूंढकर भी लागत को कम करना सम्भव है।

इस दिशा में किये गये कार्यों व प्रयासों के उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। इनसे कृषकों को अधिक लाभ मिलने के साथ ही पर्यावरण को प्रदूषित होने से भी बचाया जा सकता है।

पौध-पोषण : पौध पोषण के लिए बाजार से खरीदे गये नत्रजन, स्फुर और पोटाशयुक्त उर्वरक उपयोग में लाये जाते हैं। प्रयोगों में पाया गया है कि रासायनिक उर्वरक के रूप में दी गयी नत्रजन (जो यूरिया, अमोनियम सल्फेट आदि द्वारा दी जाती है) का सिर्फ 33-38 प्रतिशत भाग ही उस फसल को प्राप्त हो पाता है।

शेष सिंचाई जल के साथ नाइट्रोजन के रूप में रिसकर या कम नमी की अवस्था में गैसीय रूप में वातावरण में चला जाता है। इसी तरह स्फुर यानी फास्फोरस का 20 एवं पोटाश का 40 से 50 प्रतिशत अंश ही उस फसल को मिल पाता है। स्फुर का 80 प्रतिशत अंश तक काली चिकनी मिट्टी के कणों के साथ बँधकर पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता है।

इन उर्वरकों की मात्रा को कम करने एवं उपयोग क्षमता को बढ़ाने में जीवांश खाद जैसे गोबर की खाद या कम्पोस्ट या केंचुआ खाद आदि का प्रयोग लाभदायक पाया गया है। ये जैविक खाद किसान अपने स्तर पर भी तैयार कर सकते हैं। इनके अलावा अखाद्य तेलों जैसे नीम, करंज आदि की खली का उपयोग किया जा सकता है। इन खलियों के चूरे की परत यूरिया के दाने पर चढ़ाकर यूरिया के नत्रजन को व्यर्थ नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

नत्रजन वाले उर्वरकों की निर्भरता को कम करने के लिए जीवाणु कल्चर राइजोबियम या एजेक्टोबेक्टर का उपयोग, गेहूँ, जवार, मक्का, कपास आदि फसलों के साथ अंतरवर्तीय फसल के रूप में चना, गेहूँ, उड़द, अरहर, चौला आदि का उपयोग लाभदायक पाया गया है। ये दलहनवर्गीय फसलें वातावरण की नत्रजन को लेकर न सिर्फ अपने उपयोग में लाती हैं, बल्कि अपनी जड़ों में स्थिर नत्रजन का लाभ साथ लगायी गयी अंतरवर्ती को भी पहुंचाती हैं। स्फुर (फास्फोरस) की उपयोग क्षमता को बढ़ाने के लिए स्फुर घोलक बैक्टीरिया का उपयोग किया जाना चाहिए।

अपने यहां अभी भी गोबर का उपयोग उपले या कंडे बनाकर ईंधन के रूप में किया जाता है। यदि इसे गोबर गैस में परिवर्तित कर सकें तो ईंधन की समस्या हल होने के साथ ही बेहतर गुणवत्ता की खाद भी प्राप्त हो जाती है। गांव में पशुओं की संख्या के आधार पर गोबर गैसों के निर्माण, रखरखाव की जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों को सौंपी जा सकती है।

गेहूँ की फसल की कटाई के बाद खेतों को आग लगाकर साफ किया जाता है। इससे भारी मात्रा में जीवांश जलकर नष्ट हो जाते हैं। इसे जलाने के बाद फसल की कटाई के तत्काल बाद मिट्टी पलटने के हल से खेत को जोतकर ढेलेदार अवस्था में छोड़ दिया जाना चाहिए, जिससे कटे हुए पौधों के डंठल, ठूंठ आदि निचली सतह में जाकर मिट्टी से दब जाएं और वर्षा आने पर स्वतः ही विघटित होकर जीवांश खाद बन जाते हैं।

फसलों में सिंचाई जल की उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिए एक नाली छोड़कर एकांतर (अल्टरनेट) सिंचाई करना, स्प्रिंकलर (फुहार) सिंचाई, टपक सिंचाई आदि विधियां व साधनों का प्रयोग फसल की कतारों के बीच अवरोध परत (मलच) का उपयोग आदि तरीके काम में लाये जाने चाहिए।

पौध संरक्षण : रोगों और कीड़ों की बहुतायत आधुनिक और लगातार कृषि की देन है। हमारा लक्ष्य फसलों को इनके द्वारा की जाने वाली हानि से बचाना है न कि नष्ट करना। कीट व रोगनाशक रसायनों का असर सिर्फ नुकसान करने वाले कीड़ों व रोगों पर न होकर लाभ पहुंचाने वाले कीड़ों व रोगों पर भी होता है।

इनके नियंत्रण के लिए स्वच्छ कृषि, परजीवी व शिकारी कीड़ों व कीड़ों को हानि पहुंचाने वाले कवकों (फफूँदों) व वायरस का प्रयोग असरकारक पाया गया है। इनके अलावा नीम, करंज, हींग, लहसुन, अल्कोहल आदि के उपयोग, अंतरवर्ती फसल, प्रपंची फसल फेरोमेन, ट्रेप, प्रकाश प्रपंच आदि साधनों के उपयोग से रसायनों के उपयोग पर खर्च होने वाली राशि में कमी की जा सकती है। कीटनाशी रसायन अंतिम विकल्प के रूप में काम में लायें। ❑

टिहरी बांध : झील में खेल

❑ विमल भाई

टिहरी बांध के कारण भागीरथी-भिलंगना के निवासियों के पास से बहती नदी और उसके लाभ चले गए। आज स्थानीय लोग पीने के पानी के लिए तरस रहे हैं। आशंका है कि वैसे ही अब झील भी पर्यटन के नाम पर न छिन जाय।

टिहरी बांध की झील भरने के बाद सर्वे ऑफ इंडिया ने डूब की पूर्वलाईन गलत होने के कारण जिन्हें विस्थापित माना उनका पुनर्वास भी अभी तक नहीं हो पाया है। झील के किनारे के लगभग 80 गांवों में भूस्खलन के कारण नया विस्थापन शुरू हुआ है। सबसे ज्यादा खराब स्थिति तो झील के पार की है, जिसे कट ऑफ एरिया कहा जा रहा है। झील में पर्यटन की संभावनाओं व योजनाओं पर करोड़ों रुपए खर्च हो चुके हैं। दूसरी तरफ झील के किनारे के गांवों में आ रही दरारों, भूस्खलन, धसान आदि का पूरा आकलन करने में बाँध कंपनी व सरकारों की कोई इच्छा नहीं है।

टिहरी बांध की झील पर किसका अधिकार है? यह विवाद का विषय नहीं बल्कि समझ का विषय है। भागीरथी घाटी के विकास व संरक्षण के लिए टिहरी बांध परियोजना की पर्यावरण स्वीकृति 19 जुलाई, 1990 में शर्त संख्या 3.7 में केन्द्रीय ऊर्जा मंत्रायल को 31.3.1991 तक 'भागीरथी घाटी प्रबंधन प्राधिकरण' बनाने के निर्देश दिए गए थे। जिसे वास्तव में लगभग 22 साल बाद 2003 में फिर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया तब 2005 में इसे वास्तविक रूप में बनाया गया। इस प्राधिकरण ने भी टिहरी झील में पर्यटन के लिए 15 सितंबर, 2006 को नयी टिहरी में बैठक का आयोजन किया था। जिसमें एक विस्तृत योजना बनी थी। बैठक में तत्कालीन व पूर्व मुख्यमंत्रियों ने खास रुचि ली थी। राज्य सरकार ने एक 'झील प्राधिकरण' भी बनाया है। जिसकी अब तक बैठक ही नहीं हो पायी है।

टिहरी जिला पंचायत ने 13 अक्टूबर, 2011 को टिहरी व कोटेश्वर बांध झीलों के महापर्यटन के लिए लाइसेंस प्रक्रिया पर आमंत्रित सुझावों पर बैठक करके झील पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश की। इसके लिए अखबार में जो नोटिस दी गयी थी उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वहां बड़े पूंजीगत पर्यटन को ध्यान में रखकर ही काम हो रहा है। पूर्व मुख्यमंत्री के सुपुत्र श्री साकेत बहुगुणा बड़ी-बड़ी बाहरी कंपनियों को बुलाने के पक्ष में निर्देश दे रहे थे। अब स्थिति बदली है नये मुख्यमंत्रीजी क्या करेंगे? 300 के करीब आवेदन जिले में दिए गए हैं। जिसमें बाहर के लोग भी हैं। अपुष्ट जानकारी के आधार पर दोनों बांधों के निर्माण में लगे ठेकेदारों ने पहले की झील किनारे की काफी जमीन पर कब्जा कर रखा है। विस्थापितों की मांग के बावजूद उन्हें झील किनारे की जमीन का टुकड़ा नहीं मिला।

टी.एच.डी.सी. ने सरकार को बांध से 5 किलोमीटर के हिस्से पर कोई भी गतिविधि चलाने पर पाबंदी लगाई है। अभी लंबी लड़ाई के बाद भी सुरक्षा कारणों से बांध से उस पार जाने के लिए रास्ता की इजाजत स्थानीय लोगों को नहीं है। जबकि जो रास्ता दिया गया है उसकी हालत बहुत ही खराब है। सरकारी या अन्य 'बड़े' लोगों को बांध पर रास्ता दिया जाता है। यह असमंजस की स्थिति है कि टिहरी बांध की झील पर किसका अधिकार है? वास्तव में बांध विस्थापितों का ही झील पर पहला व अंतिम अधिकार बनता है। मात्र कुछ रुपए देकर यह अधिकार नहीं छीना जा सकता है।

सही तो यह है कि टिहरी बांध और कोटेश्वर बांध की झीलों संबंधी सभी रोजगारों पर जैसे मछली पकड़ना, नौकायान, मोटरबोट संचालन, रोपवे संचालन, राफ्टिंग, जलाशय में जलक्रीड़ा संबंधी सभी कामों में टिहरी बांध विस्थापितों को हक मिले। प्रभावित गांवों के लोगों में खासकर धनार लोग, पुश्तैनी नाविक और मछली पकड़ने का काम करते रहे हैं। उनकी बेरोजगारी दूर करने के लिए उन्हें मछली व बोट का काम दिया जा सकता है।

कुछ युवकों ने हिमाचल में जलक्रीड़ा संबंधी प्रशिक्षण भी लिया है। वे जलक्रीड़ा के सभी उद्यमों में सफल हैं और अन्यों को प्रशिक्षण देने की क्षमता भी रखते हैं। उन्हें चूंकि स्थानीय परिस्थितियों के बारे में सब पता है इसलिए वे इन सब कामों में उपयुक्त व नीति सम्मत भी रहेंगे। लोगों को पर्यटन आदि में भी यदि रोजगार के अवसर दिए जाएं तो यह उनके सामाजिक व आर्थिक स्तर को न केवल ऊंचा उठाएगा साथ ही पर्यटकों को भी स्थानीय समझ के साथ उच्चस्तरीय सुविधा मिलेगी।

बांध प्रभावितों स्थानीय व्यक्तियों को नौकायन, जलक्रीड़ा, राफ्टिंग, मत्स्य पालन में मात्र सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं वरन् अधिकार मिलना चाहिए। बांध प्रभावितों स्थानीय व्यक्तियों को झील संबंधी किसी भी तरह के व्यवसाय की लाईसेंस फीस न्यूनतम होनी चाहिए। 75 प्रतिशत स्थानीय श्रमिक रखने की शर्त ही नहीं वरन् सभी कामों में 75 प्रतिशत आरक्षण स्थानीय लोगों के लिए हो। यहां स्थानीय से तात्पर्य झील के किनारे के गांववासी व विस्थापित से है, चाहे कहीं भी बसे हों। इससे सही मायने में पलायन रुकेगा और जो मुश्किलें विस्थापितों ने झेली हैं और अभी भी झेल रहे हैं, इससे उनका कुछ सहयोग हो पाएगा और जीवनस्तर भी कुछ उठ पाएगा। जिला पंचायत को 'होम स्टे' जैसी पद्धति जिसमें पर्यटक घरों में रुकते हैं, को लाना चाहिए। एक सहकारी समिति के तहत यह व्यवस्था पूरे गांव में हो सकती है।

इस तरह की सहकारी समिति को लाइसेंस देकर जिला पंचायत स्थायी पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ स्थानीय विकास में भारी योगदान दे सकती है। देश में यह सफल रूप में कई स्थानों पर चलाई जा रही है। कुमाऊ में, पिथौरागढ़ के मुन्सयारी गांव में 'होम स्टे' पद्धति का लाभ ग्रामीण वर्षों से उठा रहे हैं। पर्यटकों को भी उचित दर पर आवास और भोजन मिल जाता है। वे स्थानीय संस्कृति को भी समझ पाते हैं।

बड़ी पर्यटन परियोजना में महंगे लाइसेंस प्रभावशाली लोगों, व्यापारियों , बड़े ठेकेदारों या राजनैतिक हितों के पक्ष होंगे। वास्तव में ये छोटे स्तर के उद्यमियों के पक्ष में होनी चाहिए। जिससे स्थानीय लोगों का जिनमें खासकर महिलाएँ हैं, जीवन स्तर सुधरेगा। इसके लिए आवश्यक है कि पर्यटन की छोटी परियोजनाएं हों जिन्हें स्थानीय लोग/ विस्थापित स्वयं या सहकारी समिति के माध्यम से चला सकें।

जहां ग्रामीणों को मत्स्य व्यवसाय, नौकायन, मोटरबोट संचालन, रोपवे संचालन, राफ्टिंग, जलाशय में जलक्रीड़ा संबंधी कामों की जानकारी न हो वहां जिला पंचायत को स्थानीय स्तर पर उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। प्रशिक्षण के लिए टीएचडीसी से सहयोग की मांग करनी चाहिए। टीएचडीसी ''व्यवसायिक सामाजिक दायित्व'' के अंतर्गत स्वयं इसे कर सकती है। आखिर एकमुश्त आधा-अधूरा पुनर्वास देकर, टीएचडीसी प्रतिदिन करोड़ों रुपए कमा रही है। जिसमें से राज्य सरकार भी 12 प्रतिशत→

स्पॉट

शांति सद्भावना यात्रा-2

जुलाई, 2012 में असम के बोडोलैंड में हुई भीषण जातीय हिंसा से देश डवांडोल हो गया था। तभी गांधी-विचारधारा की संस्थाएं—सर्व सेवा संघ, गांधी शांति प्रतिष्ठान, गुजरात विद्यापीठ, शांति साधना आश्रम, कस्तूरबा राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट (असम शाखा) ने हिंसक वातावरण को पुनः सामान्य करने हेतु अपना प्रयास शुरू किया। शीघ्र ही शांति-यात्रियों का एक दल प्रभावित क्षेत्रों में पहुंचकर कारणों की तहकिकात की। दल ने सभी वर्गों के लोगों से संवाद स्थापित किया। शिक्षाविदों, प्रशासकों, बोडो सहित अन्य समुदायों के नेताओं, मुसलमानों, कोच राजवंशी, राभा, सांथाल, असमी, बंगाली, नेपाली आदि से भी बातचीत की। निष्कर्षतः यह पता चला कि लोगों में प्रशासन पर विश्वास की कमी, डर, अन्य समुदायों के प्रति घृणा तथा असुरक्षा का भय व्याप्त था। दल का शांति अभियान सहायता शिविरों तथा घरों में जाकर पीड़ितों से मिलने, पदयात्रा, उपवास, विभिन्न वर्गों से संवाद, गांवों में सार्वजनिक सभाओं से प्रारम्भ हुआ। इसका परिणाम हुआ कि समुदायों, विद्यार्थियों, युवाओं एवं गांवबुड़ा के बीच फिर से बातचीत का दौर आरंभ हो गया।

शांति प्रयासों का ही फल था कि विभिन्न समुदायों के लोग विशेष गांवबुड़ा, प्रशासकों, अध्यापकों, विद्यार्थियों, युवाओं में भावनात्मक परिवर्तन दिखने लगा। हिंसक गतिविधियों को छोड़कर समुदायों ने गांव स्तर पर शांति-यात्रियों द्वारा आयोजित सभाओं में भाग लिया। तदोपरांत अपने पड़ोसी समुदायों से भी वैचारिक संवाद स्थापित किये। तीन सदस्यीय दल (श्री चंदन पाल, महाराष्ट्र के श्री धर्मेन्द्र राजपूत व पश्चिम बंगाल के श्री नतसूर्या महापात्रा) ने पिछले 20 महीनों से अपनी नजर हालात पर टिकाये हुए क्षेत्र में अपने कार्य में लगे रहे। उन्होंने बोडोलैंड के जिलों—कोकराझार, चिरांग व बक्सा में कई बैठकों का आयोजन किया। बैठकों में सम्मिलित विद्यालयों तथा कॉलेजों के छात्र व अध्यापक में महात्मा गांधी के अहिंसा, शांति, बंधुत्व, भाईचारा आदि विचारों का प्रचार-प्रसार कर शैक्षिक संस्थानों में पुस्तकालय स्थापित की गयी जिसमें गांधी-साहित्य की प्रधानता रही।

शांति अभियान की प्रगति सकारात्मक रही। दो भाई गांव की सभा गांवबुड़ा में कहा, ''हमारे मुसलमान पड़ोसी कई पीढ़ियों से हमारे भाई रहे हैं, हम इसे कैसे अस्वीकार कर सकते हैं। इनका नुकसान होता है तो मैं अपने आप को इसका दोषी मानूंगा।'' यही बात दरियादिली से पड़ोसी मुसलमान भाइयों ने भी कही। जो कभी एक-दूसरे के पास खड़ा होना भी नहीं चाहते थे, वे शांति बैठकों का हिस्सा बने। छात्रों और युवा शिविरों में भी यही दृश्य दिखा।

यद्यपि बोडोलैंड का माहौल पहले की अपेक्षा अभी शांतिपूर्ण है परंतु कुछ ताकतें इससे बिलकुल खुश नहीं हैं। वे पहले जैसे हिंसक, डर, घृणा व अविश्वास का वातावरण समुदायों के बीच फैलाना चाहते हैं। इसी कारण शांति-यात्रियों का काम यहीं पर समाप्त नहीं होता। जनता ने गांधी विचारधारा के शांति-यात्रियों के कार्य की सराहना की है और उनसे प्रेम, सहानुभूति एवं सहयोग का नाता जोड़ा है।

प्रयासों को और अधिक सार्थक बनाने के लिए सर्व सेवा संघ ने गुजरात विद्यापीठ व गांधी शांति प्रतिष्ठान के साथ मिलकर बोडोलैंड के चार जिलों—कोकराझार, चिरांग, बक्सा एवं धुबरी के विभिन्न विद्यालयों और कॉलेजों के छात्र-छात्राओं की 17 मार्च से 31 मार्च, 2014 तक शांति सद्भावना यात्रा का आयोजन किया। यात्रा में विभिन्न समुदाय के 37 छात्र-छात्राएं सम्मिलित हुए, जिनमें बोडो, मुसलमान, राभा, संथाल, कोच राजवंशी, बंगाली, असमी समुदायों के साथ-साथ तीन शांति यात्री भी सक्रिय रहे। सम्मिलित छात्र-छात्राएं तीनों धर्मों—हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई—से थे। यात्रा कोकराझार से आरंभ होकर महत्त्वपूर्ण स्थानों जैसे कोलकाता, जलगांव, बारदोली, दाण्डी, अहमदाबाद, पोरबंदर और दिल्ली तक पहुंची। युवा यात्रियों ने यात्रा के दौरान कई दर्शनीय स्थलों जैसे रामकृष्ण मठ, गांधी संग्रहालय, गांधी रिसर्च फाउंडेशन, अनुभूति स्कूल, स्वराज आश्रम, सरदार वल्लभभाई पटेल संग्रहालय, नवसारी में ममता मंदिर, मुक-वधिर विद्यालय, दाण्डी (नमक सत्याग्रह का स्थान), साबरमती आश्रम, सुरुचि ट्रस्ट (कृषि उपकरण अनुसंधान केन्द्र), कोचरब आश्रम, गुजरात विद्यापीठ, संग्रहालय, आदिवासी संग्रहालय, उद्योग कार्यशाला, पोरबंदर (महात्मा गांधी का जन्म-स्थान), गांधी स्मृति (महात्मा गांधी शहादत स्थल), राजघाट गांधी समाधि, राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, राजीव गांधी विज्ञान संग्रहालय के अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थलों जैसे दक्षिणेश्वर काली मंदिर, सेंट पॉल कैथेड्रेल, द्वारका, जामा मस्जिद, लोटस टेंपल आदि का दर्शन किया।

यात्रा के दौरान दल को कई गांधीवादी नेता व विद्वानों से मिलने व गांधी के जीवन-दर्शन को समझने का अवसर प्राप्त हुआ, इनमें प्रमुख थे—श्री चुनीभाई वैद्य, सुश्री राधा भट्ट, श्रीमती निरंजना कालरथी, श्री पी. गोपीनाथन् नायर, श्री नटवर ठक्कर, प्रो. (डॉ.) सुदर्शन आयंगार, प्रो. (डॉ.) राजेन्द्र खिमानी, प्रो. (डॉ.) जॉन, प्रो. (डॉ.) पुष्पा मोटियानी, प्रो. नरोत्तम पलन। यद्यपि प्रमुख गांधीवादी नेता श्री नारायण भाई देसाई, अत्यधिक व्यस्तता व खराब सेहत के कारण गुजरात विद्यापीठ में दल से नहीं मिल सके पर उन्होंने श्री चंदनपाल से मिलकर इस प्रकार के आयोजन पर संतुष्टि जाहिर की। गांधी संगठनों के संचालक व कार्यकर्ता यात्रा-दल से विभिन्न स्थानों पर मिले और उनका उत्साहवर्धन किया। प्रत्येक स्थानों पर स्थानीय आयोजनकर्ताओं ने बोडोलैंड, असम में हुए शांतिकार्य के विषय में जानना चाहा और श्री चंदनपाल ने उनकी जिज्ञासाओं का उत्तर दिया। कई स्थानों पर प्रेसवार्ता, चित्र-प्रदर्शनी और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया।

युवा यात्रियों द्वारा प्रस्तुत की गयी रिपोर्टों के आकलन से आभास होता है कि स्वराज आश्रम व अनुभूति स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा वातावरण साफ-सुथरा रखने के प्रयास जिनमें हाथ में झाड़ू, गुजरात विद्यापीठ के परा-स्नातक विद्यार्थियों द्वारा रसोई व्यवस्था, विद्यापीठ के विद्यार्थियों में आतिथ्य व बंधुत्व, श्रीमती निरंजना बहन की ममता ने प्रत्येक यात्री को प्रभावित किया। महात्मा गांधी की साधारण जीवनशैली, सत्य व अहिंसा की प्रतिबद्धता, अन्याय के विरुद्ध लड़ाई प्रेरणास्रोत बनी। यात्रा के दौरान युवा यात्रियों ने पाया कि हर राज्य के लोग सौहार्दपूर्ण हैं। वे जाति, धर्म के बंधनों से मुक्त हैं। युवा यात्री, यात्रा समाप्त कर वापस लौटेंगे और वे यात्रा के दौरान अर्जित किये अनुभव को अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक उन्नति में प्रयोग करेंगे। वे विद्यार्थी, युवा शिविरों के आयोजन द्वारा अधिक संख्या में क्षेत्रीय लोगों को गांधी व उनके द्वारा किये गये शांति-कार्य के संदर्भ में जागरूक व शांति कार्यों में सम्मिलित करेंगे। **–चंदन पाल**

→हिस्सा लेती है। इसलिए प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था दोनों का ही दायित्व है।

महापर्यटन में रोजगार का नया भ्रम दिखाकर लोगों को छलने से बेहतर होगा कि झीलों में पर्यटन पर एक खुली बैठक बुलाई जाए। किसी भी तरह से पर्यटन, पर्यावरण व स्थानीय संस्कृति की रक्षा व उसके सामंजस्य के साथ होना चाहिए। नये मुख्यमंत्री को इस तरफ भी ध्यान देना चाहिए। ❑

मानव जीवन-मूल्य

❑ किशनगिरि गोस्वामी

आज मनुष्य केवल शरीर बन कर रह गया है, जबकि मनुष्य मात्र शरीर से कुछ भिन्न है और इस भिन्न होने के भाव को हम भूल गये हैं। साम्राज्यवाद एक निर्मूल्यवादी चिन्तन है, जिसका जवाब मूल्य से ही दिया जा सकता है। मूल्य-परिवर्तन, संबंध-परिवर्तन, मानसिकता-परिवर्तन एवं ढांचा में परिवर्तन के माध्यम से ही नयी समाज व्यवस्था बनायी जा सकती है। दुनिया में जितनी भी क्रांतियां हुई हैं, उनमें समाज परिवर्तन पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया, व्यक्ति परिवर्तन पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। *''जीवन मूल्य''* की तो और भी उपेक्षा की गयी। आज व्यक्ति का कोई जीवन-मूल्य नहीं है। गीता का ज्ञान, कुरान का ईमान, ईसाई धर्म का प्रेम, जैन धर्म का असंग्रह, बौद्ध धर्म की करुणा और सिक्ख धर्म का 'नाहि कोई बैरी' का जीवन मूल्य हर इनसान में होना चाहिए। यही अमूल्य है।

हम मनुष्य हैं, इसलिए एक-दूसरे की सहायता से समाज बनाते हैं। सबकी सुविधा, सुरक्षा तथा सम्मान के लिए नियम बनाते हैं। नियमों का पालन करवाते हैं। जीवन को अधिक सुखकर बनाने के लिए जो ज्ञान अर्जित करते हैं, उसे सुरक्षित रखते हैं। उसका प्रचार-प्रसार करते हैं। हम जीवन का विकास भी करते हैं और प्रसार भी। उसे संकुचित नहीं करते। हम मनुष्यों का ही नहीं बल्कि *''समस्त जीव-जन्तुओं का जीवन संबंधी अधिकार''* स्वीकार करते हैं और प्रयत्न करते हैं कि जीवन की एक ऐसी पद्धति का विकास करें, जिसमें अधिक से अधिक लोग जीवित ही नहीं, वरन स्वतंत्र, सुरक्षित और सुखी रह सकें, ताकि विनाश करने वाले अधर्मी दुष्टों का दलन किया जा सके।

चरित्र दो वस्तुओं से बनता है। पहला हमारी विचारधारा एवं दूसरा हमारे समय बिताने के ढंग से। व्यक्ति की पहचान इस बात से भी होती है कि वह वाद-विवाद के समय कैसी भाषा का प्रयोग करता है या कैसा व्यवहार करता है? हमें मनसा-वाचा-कर्मणा में बदलाव लाने के प्रयास करने का संकल्प लेना चाहिए। हालांकि कोई भी संकल्प हमारी तमाम जिन्दगी को नहीं बदल सकता, लेकिन यह लोगों के लिए और स्वयं अपने लिए कुछ अच्छा करने का अवसर तो होता ही है। हमारे अच्छे विचार मैदान छोड़ सकते हैं। बदलाव एवं नयी दिनचर्या आसान नहीं है किन्तु संकल्पों को पूरा करना नामुमकिन भी नहीं है। प्रकृति के निर्माण की समकक्षता मनुष्य नहीं कर सकता। मनुष्य तो प्रकृति का अनुसरण करता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, भारत में जिसने जितना छोड़ा, उसे उतना ही महान मानते हैं। और जिसने जितना जोड़ा उसे उतना ही निचला दर्जा दिया जाता है। हमारे देश में भिखारी से आगे एक शब्द है, वह है *भिक्षु।* भिखारी का अर्थ है, उस आदमी के पास धन कभी था ही नहीं। उसने धन को कभी जाना ही नहीं। भिक्षु का अर्थ है, उसके पास धन था, उसने धन को खूब जाना और खूब भोगने के बाद उसे व्यर्थ जान कर त्याग दिया। अर्थ को व्यर्थ माना और प्रवृत्ति से निवृत्ति हो गयी। दुनिया की किसी भाषा में भिक्षु और भिखारी के ऐसे दो शब्द का वर्णन नहीं है। भारत में बुद्ध और महावीर जैसे महात्यागी हुए, जो राजसी ठाट-बाट में पल कर भिक्षु बन गये।

विश्व में आज मूलभूत समस्या है, गरीबी की। उसे मिटाने की बात तो बहुत कम होती है, चाँद-सूरज पर पहुंचने की योजनाएं ज्यादा प्रमुखता से बनती हैं। परिवार के लोग तो भूखों मर रहे हैं और चाँद-सितारों पर पहुंचने की योजनाएं बन रही हैं। बड़ी हास्यास्पद स्थिति है। हम क्यों नहीं अपनी बुद्धि का उपयोग गरीबी मिटाने में करते? भारत को आजादी मिले छः दशक से भी अधिक समय हो गया है किन्तु हिन्दुस्तान में अभी तक *रोटी* की समस्या नहीं सुलझ सकी है, वह आज भी जस की तस है। अगर इस देश में *''नैतिकता''* को फलने-फूलने का मौका मिलता, तो शायद ऐसा नहीं होता। अनैतिकता और गरीबी में एक गहरा संबंध होता है। हमारे चिन्तन में गहराई न होने, संकल्प शक्ति की न्यूनता एवं प्रशिक्षण के अभाव के कारण भी यह स्थिति बनी है।

कल का संचित सब कुछ आज ही उदरस्थ करने की जीवन-शैली अमानवीय एवं आपराधिक है। उसे छोड़ना ही होगा और जल्दी से जल्दी छोड़ना होगा। गांधी ने कहा था ''प्रकृति की मदद से हम अपनी जरूरतें पूरी करें अपना लालच नहीं, क्योंकि जरूरतें सदा सीमित, मानवोचित और दूसरों का खयाल रखने वाली होती हैं, जबकि लालच वह अथाह सागर है जिसकी थाह आज तक किसी को लगी नहीं।'' धरती पर स्वर्ग लाकर खड़ा करने की बातें तो हमारे धर्मग्रंथों में पहले से ही लिखी हुईं, फिर उन्हें अमल में लाकर धरती को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न क्यों नहीं होता? वास्तव में जो बातें ग्रंथों एवं पंथों में हैं, वे हमारे जीवन-व्यवहार में आनी चाहिए। अगर जीवन-व्यवहार में प्रवंचनाएं चलती हैं, तो धर्म कहां से आयेगा?

हमें मात्र एक ही सवाल पूछना है, सुखी, सम्पन्न और सार्थक जीवन...या तेल, पानी, यूरेनियम और जातीय गरूर...में ज्यादा कीमती कौन है? हमें सबसे पूछना चाहिए कि भाई, क्या इस छोटी-सी, प्यारी-सी, निराली और हरी-भरी धरती के अलावा भी तुम्हारे पास रहने की कोई जगह है? तो जीवन बचाओ और धरती बचाओ तथा इन दोनों की कीमत पर कुछ भी न बचाओ। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—*योगक्षेमं वहाम्यहम्*—तुम्हारे कुशल क्षेम को मैं वहन करूंगा। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1500